GISI Impact Factor 2.4620
नवम्बर-दिसम्बर 2015
वर्ष - 9 अंक - 6
ISSN 0973-9777
ijraeditor@yahoo.in

भारतीय शोध पत्रिका

आन्वीक्षिकी

मासद्वयी अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

www.anvikshikijournal.com

प्रकाशन
एम.पी.ए.एस.वी.ओ. द्वारा आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित
अन्य सहसंयोजन
सार्कः अन्तर्राष्ट्रीय शोध-पत्रिका
एशियन जर्नल ऑफ मार्डन एण्ड आयुर्वेदिक मेडिकल साइंस
वाराणसी, उ०प्र० (भारत)

MPASVO

नवम्बर-दिसम्बर २०१५ वर्ष-९ अंक-६

आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका

मासद्वयी अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

प्रधान सम्पादिका

डॉ. मनीषा शुक्ला,maneeshashukla76@rediffmail.com

पुनर्निरीक्षक संपादक

प्रो. विभा रानी दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, उ.प्र.,भारत

डॉ. नागेन्द्र नारायण मिश्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद,उ.प्र.,भारत

प्रो. उमेश चंद्र दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, उ. प्र.,भारत

सम्पादक

डॉ. महेन्द्र शुक्ल, डॉ. अंशुमाला मिश्रा

सम्पादक मण्डल

डॉ. सारिका त्रिपाठी, डॉ. मुन्नी देवी भास्कर, डॉ. प्रमोद आनंद तिवारी, डॉ. प्रमोद यादव, डॉ. सुजीत कुमार सिंह, डॉ. आरती बंसल, डॉ. अर्चना शर्मा, डॉ. आभा रानी, डॉ. विकास कुमार सिंह, डॉ. सच्चिदानंद द्विवेदी, डॉ. शरदेंदू बाली, डॉ. डी. पी. सिंह, डॉ. गीता जोशी, डॉ. रूपाली जैन, डॉ. किरन कुमारी, डॉ. मधुलिका, डॉ. नीलू कुमारी, डॉ. मनीषा आमटे, डॉ. सिद्धार्थ पाण्डेय, डॉ. मनोज कुमार राय, दिनेश मीणा, गुंजन, रमेश चन्द, शंकर, पायल, डॉ. ममता अग्रवाल, सिद्धनाथ पाण्डेय, प्रो. अंजली श्रीवास्तव

अन्तर्राष्ट्रीय सलाहकार मण्डल

रेव डोडामगोडा सुमनासार (श्रीलंका), वेन केन्डागेले सुमनारांसी थेरो (श्रीलंका), रेव टी धम्मारतना (श्रीलंका), पी.त्रिराची सोडामा (श्रीलंका), फ्रा च्युतिदेश सैन्सोम्बट (बैंकाक,थाईलैंड), फ्रा बूनसर्मस्त्रिथा (थाईलैंड), डॉ. सीताराम बहादुर थापा (नेपाल), मोहम्मद सौरजाई (जाबोल, ईरान), माजिद करीमजादेह (ईराक), डॉ. अहमद रेजा केईखाय फरजानेह (जाहेडान, ईरान), मोहम्मद जारेई (जाहेडान, ईरान), मोहम्मद मोजटाबा केयाहफरजानेह (जाहेडान, ईरान), डॉ. होसैन जेनाबदी (सिस्तान एवं बलूचिस्तान, ईरान), मोहम्मद जावेद केयाह फरजानेह (जाबोल, ईरान)

प्रबन्धक

महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

सारांश एवं सूचीपत्र

मोतीलाल बनारसीदास सूचीपत्र वाराणसी, मोतीलाल बनारसीदास सूचीपत्र दिल्ली, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पत्रिका सूचीपत्र वाराणसी, सेन्ट्रल न्यूज एजेंसी सूचीपत्र दिल्ली, डी.के.पब्लिकेशन सूचीपत्र दिल्ली, नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ साइंस कम्यूनिकेशन एण्ड इन्फारमेशन रिसोर्स सूचीपत्र दिल्ली, नोएडा कॉलेज ऑफ फिज़िकल एजुकेशन सूचीपत्र गौतमबुद्ध नगर

पाठकों से

आन्वीक्षिकी,भारतीय शोध पत्रिका प्रत्येक दो माह (जनवरी, मार्च, मई, जुलाई, सितम्बर एवं नवम्बर) पर एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण वाराणसी उ.प्र. भारत द्वारा प्रकाशित की जाती है। एक वर्ष में आन्वीक्षिकी,भारतीय शोध पत्रिका 6 भाग हिन्दी एवं 6 भाग अंग्रेजी एवं 3 अतिरिक्तांकों के भाग में प्रकाशित की जाती है। डॉक खर्च दर के सम्बन्ध में जानकारी हेतु सम्पर्क करें।

वार्षिक पाठक मूल्य दर

संस्थागत एवं व्यक्तिगत : भारतीय 5000+1000/-डाक शुल्क, एक प्रति 1200+100/- डाक शुल्क, वैदेशिक : 6000+डाक खर्च, एक प्रति 1000+डाक शुल्क

विज्ञापन एवं निवेदन

विज्ञापन के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करने हेतु प्रधान सम्पादिका के पते पर संपर्क करें। आन्वीक्षिकी एक स्ववित्तपोषित पत्रिका है,अत: किसी भी प्रकार का आर्थिक सहयोग सराहनीय होगा। कृपया अपनी सहयोग राशि चेक अथवा ड्राफ्ट के माध्यम से निम्नलिखित पते पर प्रेषित करें।

सभी पत्राचार निम्नलिखित पते पर ही प्रेषित करें-

बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया,लंका वाराणसी उ.प्र. भारत,पिन कोड 221005 मोबाइल नं. 09935784387,

टेलीफोन नं. 0542-2310539.,E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com,www.anvikshikijournal.com

मिलने का समय : 3-5 दिन में(रविवार अवकाश)

पत्रिका संयोजन : महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

प्रकाशन :एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण

प्रकाशन तिथि : 1 **नवम्बर** 2015

मनीषा प्रकाशन

(पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/ 2007-2008 बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया, लंका वाराणसी उ.प्र. भारत)

आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका

वर्ष-9 अंक-6 नवम्बर-2015

शोध प्रपत्र

उपनिषदों के प्रमुख स्त्री विषयक उद्धरण [ज्ञान खण्ड से] -डॉ. मनीषा शुक्ला 1-10
बिलासपुर जिले के स्वातंत्र्यपूर्व व स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक भूमिका -डॉ. पी.सी. घृतलहरे 11-13

महिला उत्थान और सशक्तिकरण -रामनिवास पाण्डेय 14-17
वियोगी हरि का कवि-कीर्त्तन [सूत्रात्मक आलोचना एवं इतिहास बोध का संगम] -डॉ. विकास कुमार सिंह 18-26

कबीर का दर्शन : एक विवेचन -डॉ. सुजीत कुमार सिंह 27-29
हिन्दी कहानियों में वृद्ध विमर्श -डॉ. विजय कुमार 30-33

निराला की साहित्यिक अवधारणा : काव्य एवं गद्य -डॉ. सच्चिदानंद द्विवेदी 34-43
कर्णचरित एवं रश्मिरथी : नूतन और रमणीय काव्य -डॉ. अंशुमाला मिश्रा 44-52

खड़ी बोली कविता पर ब्रज भाषा का प्रभाव -डॉ. विभा मेहरोत्रा 53-59
21वीं सदी की पुरुष कवियों की कविताओं में चित्रित स्त्री -डॉ. राधा वर्मा 60-65

हिन्दी साहित्य की विलक्षण विधायें, वाद व शब्दावली -डॉ. रमेश टण्डन 66-70
भारतीय कृषि, कृषक एवं समाज -अरून कुमार गुप्त 71-75

समेकित कीट प्रबंधन : किसानों को जागरूक बनाने की आवश्यकता -डॉ. कुमार भारत भूषण एवं मनीष मोहन गोरे 76-78
विकास के लिये तत्पर होता बिहार -डॉ. हरिशंकर राय 79-83

"पाँचवीं अनुसूची क्षेत्र [पेसा क्षेत्र] में महिला नेतृत्व, ग्राम पंचायत बेलरगांव के विशेष संदर्भ में" -प्रकाश कुमार छाता 84-88
जनगणना 2011 के संदर्भ में भारतीय महिलाओं की स्थिति -डॉ. सिद्धार्थ पाण्डेय 89-91

संस्कारों का वैज्ञानिक योगदान [संस्कार का व्यक्तित्व विकास व आध्यात्मिक योगदान] -डॉ. कीर्ति चौधरी झा 92-96
नैसर्गिक और मानव निर्मित पर्यावरण -रामनिवास पाण्डेय 97-100

"वेदान्त" पर भाष्यकार आचार्यों के नवीन सम्प्रदाय -डॉ. तनूजा अग्रवाल 101-104
परिवर्तित पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य में आर्थिक विकास -डॉ. राजेश निगम 105-108

प्रिंट ISSN 0973-9777, वेबसाइट ISSN 0973-9777

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,1-10
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 06 सितम्बर 2015

उपनिषदों के प्रमुख स्त्री विषयक उद्धरण [ज्ञान खण्ड से]

डॉ. मनीषा शुक्ला*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *उपनिषदों के प्रमुख स्त्री विषयक उद्धरण [ज्ञानखण्ड से]* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *मनीषा शुक्ला* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

अमृतनादोपनिषद् : इस उपनिषद् में कहा गया है *त्वं स्त्री पुमांस्तवं च कुमार एकस्त्वं वै कुमारी हाथ भूसवमेय। त्वमेव धाता वरूणश्च राजा त्वं वत्सरोऽग्न्यर्यम एव सर्वम्।।11।।* अर्थात् (हे परमात्मा) आप अकेले ही स्त्री, पुरूष, कुमार एवं कुमारी है। आप ही पृथिवी है। आप ही धाता, वरूण, सम्राट, संवत्सर, अग्नि और अर्यमा (सूर्य) हैं। आप ही सब कुछ है।

ऐतरेयोपनिषद् के द्वितीय अध्याय, प्रथम खण्ड के मंत्र-5, पृष्ठ 47 में कहा गया है *पुरूषे ह वा अयमादितो गर्भो भवति। यदेतद्रेतरतदेतत्सर्वेभ्योऽङ्गभ्यस्तेजः संभतमात्मन्येवात्मानं बिभर्ति तद्यदा स्त्रियां सिञ्चत्यथेनज्जनयति तदस्य प्रथमं जन्म।।1।।* तात्पर्य है कि, सर्वप्रथम यह जीव पुरूष के शरीर में गर्भरुप से विराजमान रहता है। पुरुष के शरीर में स्थित जो वीर्य है, वह पुरूष के समस्त अङ्गों से समुत्पन्न तेज है। पहले पुरूष आत्मस्थ तेज को अपने ही अन्दर पोषित करता है, तदुपरान्त जब वह इस वीर्यरूप तेज का स्त्री में सिंचन करके गर्भरूप में स्थित रहता है, यह इसका (जीव का) प्रथम जन्म है।

''वर्तमान प्रजनन विज्ञान (जेनेटिक साइन्स) भी वीर्य में गुण-सूत्रों (क्रोमोजोम्स) तथा जीन्स (जीवाणुओं) में व्यक्तित्व की सभी विशेषताओं का समावेश मानता है। स्त्री के गर्भ में पुरूष का परिपाक यह उपनिषद् की अपनी दृष्टि है। पदार्थ विज्ञान की अपनी सीमायें है, ऋषि उसमें चेतना का संकल्पयुक्त तंत्र देखते हैं।''

तत् स्त्रिया आत्मभूयं गच्छति यथा स्वमङ्गं तथा तस्मादेनां न हिनस्ति। सास्यैतमात्मानमत्र गतं भावयति।।2।। अर्थात् जिस प्रकार स्त्री के अपने ही शरीर के अङ्ग होते हैं, उसी प्रकार पुरूष द्वारा सिंचित वह वीर्य भी स्त्री से तादात्म्य स्थापित कर लेता है। अस्तु, वह स्त्री को किसी प्रकार का कष्ट नहीं पहुँचाता। वह स्त्री अपने उदर में स्थापित पति के (वीर्यरूप) आत्मा का पोषण करती है।

''सृष्टि के आदि में विराट् पुरूष और प्रकृति संयोग जैसा ही यह संयोग होता है।''

* प्रधान सम्पादिका, आन्वीक्षिकी पत्रिका, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

सा भावयित्री भावयितव्या भवति तं स्त्री गर्भ बिभूर्ति सोऽग्र एव कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति। स यत्कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयत्यात्मानमेव तद्भावयत्येषां लोकानां सन्तत्या एवं सन्तता हीमे लोकास्तदस्य द्वितीयं जन्म।।3।। इसका तात्पर्य है कि, वह पालनकर्त्री स्त्री पालनीय (अपने पति द्वारा पालन करने योग्य) होती है। गर्भवती स्त्री प्रसव से पूर्व गर्भस्थ जीव का पालन करती है और वह पुरूष (पिता) प्रसवोपरान्त सर्वप्रथम (जातकर्म आदि संस्कार से) उस शिशु को सुसंस्कृत करता है। वह जन्मोपरान्त शिशु को इस प्रकार संस्कारित करके, उसकी उन्नति करके वास्तव में अपनी ही उन्नति करता है; क्योंकि इसी प्रकार लोक (चौदहवों भुवन) प्रवृद्ध होते हैं। यही इस (जीव) का द्वितीय जन्म है।

सोऽस्यायमात्मा पुण्येभ्यः कर्मभ्यः प्रतिधीयते। अथास्यायमितर आत्मा कृतकृत्यो वयोगतः प्रैति स इतः प्रयन्नेव पुनर्जायते तदस्य तृतीयं जन्म।।4।। अर्थात् इस आत्मा (पिता) का यह पुत्रस्वरूप आत्मा पुण्यों के लिये (पिता के) प्रतिनिधि रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है। तदुपरान्त यह जीव (पितारूप) वयोवृद्ध होकर अपने लौकिक कर्त्तव्यों को पूरा करके इस लोक से प्रस्थान कर जाता है। इसके बाद उसका पुनर्जन्म होता है। यह इस जीव का तृतीय जन्म है।

तदुक्तमृषिणा-गर्भे नु सन्नवेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा। शतं मा पुर आयसीररक्षन्नधः श्येनो जवसा निरदीयमिति गर्भ एवैतच्छयानो वामदेव एवमुवाच।।5।। इसक अर्थ यह हुआ, यही बात ऋषि (वामदेव) ने इन शब्दों में कही है- मैंने गर्भ की स्थिति में ही (अंतः करण, इन्द्रियादि) देवताओं के जन्मों का रहस्य भली-भांति जान लिया है। मैं सैकड़ों लौहयुक्त (लोहे की तरह कठोर) पिंजड़ों में आबद्ध था। अब मुझे तत्वज्ञान प्राप्त हो गया है, अतः मैं बाज पक्षी के समान (उन पिंजड़ों को भेदकर) बाहर आ गया हूँ। इस प्रकार गर्भ में शयन करते हुये ऋषि वामदेव ने यह तथ्य प्रकट किया था।

''पदार्थ विज्ञानी पदार्थों की प्रयोगशाला में प्रवेश करके प्रयोगों द्वारा अनुसंधान करते हैं। चेतना विज्ञान के विज्ञानी ऋषिगण चेतना की प्रयोगशालाओं में संकल्पपूर्वक प्रवेश करके अनुसंधान करते थे। वे परम ब्योम तक अपनी चेतना ले जाकर वेद के रहस्य प्रकट कर सकते थे और प्रकृति के सूक्ष्म घटकों में प्रवेश करके उनकी विशेषताओं का साक्षात्कार कर लेते थे। ऋषि वामदेव ने अपनी आत्म चेतना को इसी अनुसंधान के लिये संकल्पपूर्वक गर्भरूप में स्थापित किया तथा पूर्ण जागरूक रहकर चेतना के रहस्यों का अध्ययन किया, यही बात यहाँ स्पष्ट की गयी है।''

कठोपनिषद् के अध्याय-1, वल्ली-1, मंत्र-10, पृष्ठ 51 में आया है *वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान्। तस्यैता ँ शान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम्।।7।।* अर्थात् पुत्र के वचन से सहमत होकर पिता ने नचिकेता को यम के पास भेज दिया। वे बाहर गये थे, नचिकेता प्रतीक्षारत रहे। लौटने पर यम की पत्नी ने उनसे कहा- वैश्वानर अग्नि ही ब्राह्मण अतिथि रूप में घरों में प्रवेश करते हैं। सम्भ्रान्त जन उनका अर्घ्य-पाद्यादि द्वारा सत्कार करते हैं। अतः (अर्घ्य हेतु) जल प्रदान करें।

आशाप्रतीक्षे सङ्गत ँ सूनृतां चेष्टापूर्ते पुत्रपशू ँश्च सर्वान्। एतद्वृङ्के पुरूषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन्वसति ब्राह्मणो गृहे।।8।। इसका तात्पर्य है; जिनके घर ब्राह्मण-अथिति भोजन किये बिना निवास करता है, उस मंदबुद्धि पुरूष की आशा (अज्ञात इष्टार्थ की प्राप्ति अभिलाषा), प्रतीक्षा (निश्चित इष्टार्थ की प्राप्ति प्रतीक्षा) को, उनके संयोग से उपलब्ध होने वाले फल को, कूपादि निर्माणजन्य फल को तथा समस्त पुत्र और पशु आदि को (आतिथ्य सत्कार से रहित) अतिथि नष्ट कर देता है।

कठोपनिषद् के अध्याय-1, वल्ली-1, मंत्र-29, पृष्ठ 55 में प्रकाशित है *ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान्कामा ँश्छन्दतः प्रार्थयस्व। इमा रामाः सरथाः सूतर्या न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः/ आभिर्मत्प्रत्ताभिः प्ररिचारयस्व नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः।।25।।* अर्थात् हे नचिकेता! मर्त्यलोक में जो-जो भोग्य पदार्थ दुर्लभ है, उन सभी को तुम स्वेच्छा पूर्वक मांग लो। रथ और (कर्णप्रिय) वाद्य विशेषों से युक्त इन स्वर्ग की अप्सराओं को प्राप्त कर लो, मनुष्यों द्वारा इस प्रकार की स्त्रियाँ प्राप्त करना सम्भव नहीं है। हमारे द्वारा प्रदत्त इन रमणियों से आप अपनी सेवा-सुश्रुषा करायें; किन्तु हे नचिकेता! मृत्यु के बाद आत्मा का क्या होता है? यह हमसे न पूछें।

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः। अपि सर्व जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते।।26।। (तब नचिकेता ने कहा) हे यमराज! जिन साधनों का आपने वर्णन किया है, वे 'कल रहे भी या नहीं', इसमें पूरा संदेह है। साथ ही ये मनुष्य की इन्द्रिय-सामर्थ्य को भी क्षीण कर डालते हैं। जिसे आप दीर्घ जीवन के रूप में हमें देना चाहते हैं, वह सम्पूर्ण जीवन भी (भोगों के लिये) कम ही है। (अतः) रथादि वाहन एवं (अप्सराओं के) नाच-गान आपके ही पास रहें अर्थात् मुझे इनकी कोई कामाना नहीं।

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा। जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं वरस्तु मे वरणीयः स एव।।27।। तात्पर्य है; मनुष्य को धन से संतुष्ट नहीं किया जा सकता। जहाँ हमें आपके दुर्लभ दर्शन-लाभ की प्राप्ति हो गई, वहाँ धन तो हम (अपने पुरूषार्थ से) उपलब्ध कर ही लेंगे। जब तक आप यमपुरी का शासन करते रहेंगे, तब तक हम जीवित ही रहेंगे, पर हमारा प्रार्थनीय वर तो वह आत्मज्ञान से सम्बन्धित ही है।

अजीर्यताममृतानामुपेत्य जीर्यन्मर्त्यः क्वधः स्थः प्रजानन्। अभिध्यायन्वर्णरतिप्रमोदानतिदीर्घे जीविते को रमेत।।28।। अर्थात् हे यमराज! वृद्ध होकर मृत्यु को प्राप्त होने वाला ऐसा कौन विवेकशील मनुष्य होगा, जो आप जैसे जरा-मरण रहित देवताओं के दुर्लभ सान्निध्य को प्राप्त करके भी अप्सराओं के सौन्दर्य, प्रेम तथा आमोद-प्रमोदजन्य क्षणभंगुर सुखों की अभिलाषा करेगा?

कठोपनिषद् के अध्याय-2, वल्ली-1, मंत्र-9, पृष्ठ 63 में आया है *या प्राणेन संभवत्यदितिर्देवतामयी। गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तिं या भूतेभिर्व्यजायत, एतद्वै तत्।।7।।* इसका तात्पर्य है; देव क्षमता सम्पन्न अदिति (देवमाता अदिति या अखण्ड चेतना) जो सर्वप्रथम प्राणों (जीवनी शक्ति) सहित उत्पन्न होती है, वह सभी की हृदय गुहा में प्रविष्ट होकर वहीं निवास करती है। यही वह ब्रह्म है।

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुभृतो गर्भिणीभिः। दिवे दिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः एतद्वै तत्।।8।। अर्थात् जिस प्रकार गर्भवती स्त्रियों द्वारा विधिवत् पोषित गर्भ धारण किया जाता है, उसी प्रकार जातवेदा अग्नि दो अरणियों के मध्य स्थित रहता है। वह प्रज्ज्वलित होकर, हवन करने योग्य सामग्रियों से युक्त पुरूषों द्वारा प्रतिदिन स्तुत्य होता है। यही वह ब्रह्म है।

इसी उपनिषद् के खण्ड-4, मंत्र-9, पृष्ठ 73 में आया है *स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियामजगाम बहुशोभमानामुना ँ हैमवतीं ता ँ होवाच किमेतद्यक्षमिति।।12।।* तात्पर्य है; तब इन्द्रदेव उसी आकाश में स्थित अतिशय शोभामयी भगवती हैमवती (हिमाचल पुत्री) उमादेवी के पास (आ) गये और उनसे पूछने लगे-यह यक्ष कौन था?

इसी खण्ड के 73वें पृष्ठ में आया है *सा ब्रह्मोति होवाच ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वमिति ततो हैव विदांचकार ब्रह्मोति।।* इसका तात्पर्य है कि, उमादेवी बोलीं- वे ब्रह्म हैं, उनको विजय को तुम लोगों ने अपने अहंभाव से अपनी विजय मान लिया था। देवी उमा के इस उत्तर से इन्द्रदेव ने स्पष्ट समझ लिया कि वह दिव्य यक्ष निश्चय ही ब्रह्म थे।

गायत्र्युपनिषद् में पृष्ठ 80 पर आया है *पृथिव्यर्च्च समदधादृचाऽग्निमग्निना श्रियं श्रिया स्त्रियं मिथुनं मिथुनेन प्रजां प्रजया कर्म कर्मणा तपस्तपसा सत्यं सत्येन ब्रह्म ब्रह्मणा ब्राह्मणं ब्राह्मणेन व्रतं व्रतेन वै ब्राह्मणः संशितोभवत्यशून्यो भवत्यविच्छिन्न।।3।।* तात्पर्य है; (देव सविता ने) पृथ्वी के साथ ऋक् को संयुक्त किया। ऋक् से अग्नि को, अग्नि से श्री को, श्री से स्त्री को, स्त्री से जोड़े को, जोड़े के साथ प्रजा को, प्रजा से कर्म को, कर्म से तप को, तप से सत्य को, सत्य से ब्रह्म (वेदज्ञान) को, ब्रह्म (वेदज्ञान) से ब्राह्मण को, ब्राह्मण से व्रत को संयुक्त किया। व्रत से ही वह ब्राह्मण तेजस्वी होता है, परिपूर्ण होता है और अविच्छिन्न होता है।

छान्दोग्योपनिषद् के पृष्ठ 84 में *तदेतन्मिथुनमोमित्येतस्मिन्नक्षरे स ँसृज्यते यदा वै मिथुनौ समागच्छत आपयतो वै तावन्योन्यस्य कामम्।।6।।* ऐसा कहा गया है जिसका तात्पर्य है; जिस प्रकार मिथुन (स्त्री-पुरूष) का मिलन एक दूसरे की कामनाओं की पूर्ति करता है, उसी प्रकार इस (वाणी और प्राण अथवा ऋचा और साम के) जोड़े के संयोग से ॐ कार का संसृजन होता है।

इसी उपनिषद् के अध्याय-1, खण्ड-10, मंत्र-2, पृष्ठ 95 में आया है *मटचीहतेषु कुरूष्वाटिक्या सह जाययोषस्तिर्ह चाक्रायण इभ्यग्रामे प्रद्राणक उवास।।1।।* अर्थात् एक समय ओलों की वृष्टि के कारण कुरूदेश की खेती विनष्ट हो गयी। उस समय इभ्य ग्राम में चक्र ऋषि के पुत्र उषस्ति अपनी अल्पवयस्का स्त्री के साथ बड़ी दीन अवस्था में रहने लगे थे।

इसी खण्ड के पृष्ठ 96 में *स ह खदित्वातिशेषाञ्जायाया आजहार साग्र एव सुभिक्षा बभूव तान्प्रतिगृह्य निदधौ।।5।।* ऐसा प्राप्त होता है, जिसका अर्थ है; उषस्ति ऋषि ने उनमें से एक भाग खाकर दूसरा भाग ले जाकर अपनी पत्नी को दिया, वह पहले ही बहुत सी भिक्षा प्राप्त कर चुकी थी, सो उसने उस उड़द को लेकर रख दिया।

स ह प्रातः संजिहान उवाच यद् बतान्नस्य लभेमहि लभेमहि धनमात्रा ँ राजासौ यक्ष्यते स मा सर्वेरार्तिवज्यैचर्वृणीतेति।।6।। अर्थात् तत्पश्चात् प्रातः काल शय्या त्यागने के बाद उषस्ति ऋषि ने अपनी पत्नी से कहा- मुझे कहीं से थोड़ा अन्न प्राप्त हो जाता, तो उसे खाकर मैं निर्वाह के लिये धन प्राप्त कर लेता। यहाँ समीपस्थ राजा यज्ञ करने वाले हैं, वे मुझे सम्पूर्ण ऋत्विक् कर्मों के लिये वरण कर लेंगे।

तं जायोवाच हन्त पत इम एव कुल्माषा इति तान्खादित्वामुं यज्ञं विततमेयाय।।7।। तात्पर्य है; उषस्ति ऋषि की पत्नी ने उनसे कहा- हे स्वामिन्! ये आपके दिये हुये उड़द रखे हैं, इन्हें आप खा लें। उषस्ति ऋषि उन्हें खाकर उस विशाल यज्ञ में गये।

इसी उपनिषद् के अध्याय-2, खण्ड-13, मंत्र-1, पृष्ठ 105 में *उपमन्त्रयते स हिंकारो ज्ञपयते स प्रस्तावः स्त्रिया सह शेते स उद्गीथः प्रति स्त्रीं सह शेते स प्रतिहारः कालं गच्छति तन्निधनं पारं गच्छति तन्निधनमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतम्।।* 1।। ऐसा आया है, जिसका अर्थ है; अब स्त्री-पुरूष के जोड़े के रूप में वामदेव साम की उपासना का वर्णन किया जाता है। पुरूष का संकेत देना हिंकार है। अपनी अभिव्यक्ति प्रस्ताव है। शयन उद्गीथ है। उस समय अनुकूल व्यवहार प्रतिहार है। स्नेह और सौहार्द्र पूर्वक साथ-साथ समय व्यतीत करना निधन है। यह वादेव्य साम स्त्री-पुरूष के जोड़े में प्रतिष्ठित हैं।

''ऋषि ने दाम्पत्य और उनके माध्यम से चलने वाले प्रजनन चक्र को वामदेव्य साम के अन्तर्गत कहा है। कुछ लोग इस प्रसंग पर अश्लीलता का अरोप लगाते हैं, किंतु ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि ऋषि प्रकृति-प्रवाह के अन्तर्गत चलने वाले प्राण-प्रवाह के विभिन्न चक्रों की व्याख्या विभिन्न साम साधनाओं के रूप में कर रहे हैं। पुरूष-नारी द्वारा संचालित प्रजनन विज्ञान (जेनेटिक साइन्स) को छोड़ा कैसे जा सकता था? वे (ऋषि) तो एक विशिष्ट साम (प्राणों से प्राणी के विकास की श्रेष्ठ साधना) देखते हैं। अस्तु, इस ज्ञान-विज्ञान के प्रसंग में कहीं अश्लीलता की गंध लेने का प्रयास नहीं करना चाहिये।''

स य एवमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतं वेद मिथुनीभवति मिथुनान्मिथुनात्प्रजायते सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या न कां च न परिहरेत्तद्व्रतम्।।2।। अर्थात् जो साधक दाम्पत्य जीवन को वामदेव्य साम से ओत-प्रोत जानकर तद्नुसार व्यवहार करता है, वह सुख से परिपूर्ण रहता है। वह सुसन्तति प्राप्त करता है, वह पूर्ण आयु का उपभोग करता है, तेजोमय जीवन जीता है तथा प्रजाओं एवं पशुओं से समृद्ध होता है। वह महान कीर्ति से वृद्धि को प्राप्त करता है। वह किसी का (अपनी पत्नी का) कभी परित्याग न करे। यही साधक का व्रत है।

छान्दोग्योपनिषद् के पृष्ठ 128 में *तमुह परः प्रत्युवाचाह हारेत्वा शूद्र तवैव सह गोभिरस्त्विति तदुह पुनरेव जानश्रुतिः पौत्रायणः सहस्रं गवां निष्कमश्वतरीरथं दुहितरं तदादाय प्रतिचक्रमे।। 3।।* ऐसा आया है जिसका तात्पर्य है; उस राजा से रैक्व ने कहा- हे क्षुद्र! गौएँ, हार और रथ अपने पास रखो। तब जनश्रुत के प्रपौत्र एक सहस्र गौएँ, एक हार, खच्चरों से जुता रथ और अपनी कन्या लेकर उनके पास आये।

त्त ँ हाभ्युवाद रैक्वेद ँ सहस्रं गवामयं निष्कोऽयमश्वमतरीरथ इयं जायाऽयं ग्रामो यस्मिन्नास्सेऽन्वेव मा भगवः शाधीति।।4।। अर्थात् राजा रैक्व से कहा- हे रैक्वे! ये एक हजार गौएँ, यह हार, खच्चरों से जुता रथ, यह पत्नी और यह गाँव (जिसमें आप रहते हैं) आप ले लें। हे भगवन्! मुझे ईश्वरीय अनुशासन बतायें।

तस्या ह मुखमुपोद्गृह्णन्नुवाचाजहारेमाः शूद्रानेनैव मुखेनालापयिष्यथा इति ते हैते रैक्व पर्णनाम महावृषेषु यत्रास्मा उवास तस्मै होवाच।।5।। अर्थात् तब रैक्व ने उस राजकन्या को विद्या ग्रहण कर द्वार समझकर राजासे कहा- हे क्षुद्र! आप ये जो कुछ लाये हैं, ये सब गौण हैं; परन्तु विद्या ग्रहण के इस द्वार से आप (प्रसन्न करके) मुझसे उपदेश कराते है। इस प्रकार जितने क्षेत्र में वे *रैक्व* रहते थे, वे सभी गांव महावृष देश में *रैक्वपर्ण* के नाम से प्रसिद्ध हुये। (इससे प्रसन्न होकर) उन (रैक्व) ने उस राजा से कहा।

छान्दोग्योपनिषद् के चतुर्थ खण्ड में *सत्यकामो ह जाबालो जबालां मातरमामन्त्रयांचक्रे ब्रह्मचर्यं भवति विवत्स्यामि किं गोत्रोन्वहमस्मीति।।1।।* ऐसा वर्णन हुआ है जिसका तात्पर्य यह है कि, सत्यकाम जाबाल ने अपनी माँ जबाला से कहा- हे माते! मैं ब्रह्मचारी बनकर गुरूकुल में रहना चाहता हूँ, मुझे बतायें कि मेरा गोत्र क्या है?

सा हैनमुवाच नाहमेतद्वेद तात यद्गोत्रस्त्वमसि ब्रह्महं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे साहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसि स सत्यकाम एव जाबालो ब्रुवीथा इति।।2।। अर्थात् हे तात्! तुम जिस गोत्र के हो,

उसे मैं भी नहीं जानती। यौवनावस्था में मैं बहुत से अतिथियों की परिचर्या में संलग्न रहती थी। उन्हीं दिनों तुझे प्राप्त किया, तत्पश्चात् तुम्हारे पिता के न रहने पर (उनके दिवंगत हो जाने पर) मैं गोत्र न जान सकी। अतः मैं नहीं जानती कि तुम्हारा गोत्र क्या है? मैं जबाला नाम की हूँ और तुम सत्यकाम नाम के हो, अतः आचार्य से कहो- मैं सत्यकाम जाबाल हूँ।

स ह हारिद्रुमतं गौतमयेत्योवाच ब्रह्मचर्य भगवति वत्स्याम्युपेयां भगवन्तमिति।।3।। उन्होंने ऋषि हारिद्रुमत गौतम के पास जाकर कहा- हे भगवन्! मैं आपके पास ब्रह्मचर्य पूर्वक निवास करना चाहता हूँ, इसलिये मैं आपके पास आया हूँ।

त ँ होवाच किंगोत्रो नु सोम्यासीति स होवाच नाहमेतद्वेद भो यद्गोत्रोऽहमस्म्यपृच्छं मातर ँ सा मा प्रत्यब्रवीद्बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसीति सोऽह ँ सत्यकामो जाबालोऽस्मि भो इति।।4।। इसका तात्पर्य है; गौतम ऋषि ने कहा- हे सौम्य! तुम किस गोत्र के हो? उन्होंने कहा- हे भगवन्! मैं किस गोत्र का हूँ, यह मैं नहीं जानता। मैंने अपनी माता से पूछा तो उन्होंने कहा कि मैं बहुत पहले से अतिथियों की सेवा करती रहती थी, जब मुझे प्राप्त किया, तब तुम्हारे पिता के (शीघ्र) न रहने से मैं गोत्र न जान सकी (पूछ सकी)। अतः मैं नहीं जानती कि तुम किस गोत्र के हो? मेरा नाम जबाला है, तुम्हारा सत्यकाम। अतः मैं सत्यकाम जाबाल हूँ।

इसी में पृष्ठ 134 में *तं जायोवाच तप्तो ब्रह्मचारी कुशलमग्नीन्परिचचारीन्मा त्वाग्नयः परिप्रवोचन्ब्रूह्यास्मा इति तस्मैं हाप्रोच्यैव प्रवासांचक्रे।।2।।* इस प्रकार प्राप्त होता है, जिसका तात्पर्य है; आचार्य सत्यकाम से उनकी धर्मपत्नी ने कहा- यह ब्रह्मचारी बहुत तपश्चर्या कर चुका है, इनके द्वारा भली प्रकार अग्नियों की परिचर्या भी की गई है। अतः आप इसे उपदेश कर दें, जिससे अग्नियाँ आपकी निन्दा न करें, किन्तु वे बिना कुछ कहे प्रवास पर चल दिये।

स ह व्याधिनानशितुं दध्ने तमाचार्यजायोवाच ब्रह्मचारित्रशान किंनु नाश्नासीति स होवाच बहव इमेऽस्मिन्पुरूषे कामा नानात्यया व्याधिभिः प्रतिपूर्णोऽस्मि नाशिष्यामीति।।3।। उन उपकोसल ने मानसिक व्यथा से अनशन करने का निश्चय किया। उनसे आचार्य कीधर्मपत्नी ने कहा- हे ब्रह्मचारिन्! तू भोजन क्यों नहीं करता? उन्होंने कहा- इस पुरूष में बहुत सी कामनायें रहती हैं, जो दुःख देती हैं। मैं उन्हीं विविध मानसिक व्यथाओं से परिपूर्ण हूँ, अतः भोजन नहीं करूँगा।

छान्दोग्योपनिषद् के अध्याय-5, खण्ड-2, मंत्र-9, पृष्ठ 143 में बताया गया है *निर्णिज्य क ँ सं चमसं वा पश्चादग्नेः संविशति चर्मणि वा स्थण्डिले वा वाचंयमोऽप्रसाहः स यदि स्त्रियं पश्येत्समृद्धं कर्मेति विद्यात्।।8।।* अर्थात् इसके बाद अग्नि के पृष्ठ भाग पर पीछे की ओर पवित्र मृगचर्म आदि बिछाकर अथवा स्थण्डिल (पवित्र यज्ञ भूमि) में ही वाणी का संयम रखते हुये शयन करता है। उस समय यदि वह स्वप्न में स्त्री का दर्शन करे, तो यह समझे कि मेरा यह अनुष्ठान सफलता को प्राप्त हो गया।

तदेष श्लोकः। यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रिय ँ स्वप्नेषु पश्यति। समृद्धिं तत्र जानीयात्तस्मिन्स्वप्ननिदर्शने तस्मिन्स्वप्ननिर्दशन इति।।9।। इससे सम्बन्धित यह श्लोक- 'काम्य कर्मो में जब स्त्री को देखे, तो उस स्वप्न के दर्शन होने पर उस कार्य की सफलता समझे।

इसी उपनिषद् के अष्टम् खण्ड, पृष्ठ 146-147 में वर्णन हुआ है *योषा वाव गौतमाग्निस्तस्या उपस्थ एव समिद्यदुप-मंत्रयते स धूमो योनिरर्चिर्यदन्तः करोति तेऽङ्गरा अभिनन्दा विस्फुलिङ्गाः।।1।।* तात्पर्य है; हे गौतम! उस अग्नि विद्या की स्त्री ही दिव्यानि है। उसका उपस्थ (जननाङ्ग) ही समीधा अर्थात् ईंधन है, विचार विमर्श ही उसका धूम्र है, योनि ही ज्वाला है। स्त्री-पुरूष का सान्निध्य ही उस दिव्याग्नि के अङ्गारे हैं और आनंदानुभूति ही (विस्फुलिङ्ग) चिनगारियाँ हैं।

इसी में *तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति तस्या आहुतेर्गर्भः संभवति।।2।।* अर्थात् उस दिव्याग्नि में देवगण वीर्य का यजन करते है, उस विशिष्ट यजन कार्य से श्रेष्ठ गर्भ का अवतरण होता है।

''इस 5वीं आहुति के पकने पर 1 आहुति में होमा गया आपः (मूल जीवन) तत्व काया में स्थित पुरुष वाचक 'जीव या प्राणी' के रूप में विकसित हो जाता है।''

इसी उपनिषद् के नवम् खण्ड, पृष्ठ 147 में *इति तु पञ्चम्यामाहुतावापः पुरूषवचसो भवन्तीति स उल्बावृतो गर्भो दश वा नव वा मासान्तः शयित्वा यावद्वाथ जायते।।1।।* ऐसा आया है, जिसका तात्पर्य है; इस तरह से अग्नि विद्या की 5वीं आहुति के प्रदान किये जाने पर आपः (प्रथम आहुति में होमा गया श्रद्धारूप सृष्टि का मूल सक्रिय प्रवाह) पुरूष रूप से

हो जाता है। वह गर्भ जरायु से ढका हुआ नौ या दस महीने अथवा जब तक पूर्ण अङ्ग विकसित नहीं होता, तब तक गर्भ के भीतर ही शयन करने के बाद पुनः प्रादुर्भूत होता है।

''यहाँ तक अग्निविद्या का रहस्य प्रकट हो जाने पर पूछे गये 5वें प्रश्न का उत्तर स्पष्ट हो जाता है। इसके बाद पुरूष रूप में उत्पन्न प्रजा की गति सम्बन्धी अन्य प्रश्नों के समाधान प्रकट किये जाते हैं।''

छान्दोग्योपनिषद् के अध्याय-5, खण्ड-11, मंत्र-3, पृष्ठ 149 में आया है *स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिब ँश्च गुरोस्तल्प-मावसन्ब्रह्महा च। एते पतन्ति चत्वारः पञ्चमश्चार ँस्तैरिति।।9।।* सोने (स्वर्ण) का हरण करने वाले, मद्यपान करने वाले, गुरू की स्त्री से गमन करने वाले, ब्रह्म विद्या को जाने वालों की हत्या करने वाले- ये चार प्रकार के कृत्य व्यक्ति के पतन का कारण बनते हैं और 5वाँ कारण उन सभी के साथ किया गया संसर्ग (व्यवहार या आचरण) है।

इसी उपनिषद् के अध्याय-5, खण्ड-14, मंत्र-1, पृष्ठ 151 में *प्रवृतोऽश्वतरीरथो दासीनिष्कोऽत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते चक्षुष्ट्वे तदात्मन इति होवाचान्धोऽभविष्यो यन्मां नागमिष्य इति।।2।।* अर्थात् राजा ने कहा कि आपके पास हार से सुसज्जित दासियाँ एवं खच्चरों से जुता हुआ रथ भी विद्यमान है। आप अन्न का भक्षण और प्रिय-इष्ट का दर्शन करते हैं। ऐसे श्रेष्ठ वंश में ब्रह्मतेज का निवास रहता है, लेकिन यह आत्मा का ही चक्षु है। राजा अश्वपति ने पुनः कहा कि यदि आप मेरे पास न आये होते, तो निश्चित ही अपने दोनों नेत्रों से रहित हो जाते।

15वें खण्ड, पृष्ठ 178 में आया है *प्राणो वा आशाय भूयान्यथा वा अरां नाभौ समर्पिता एवमस्मिन् प्राणे सर्व ँसमर्पितं प्राणः प्राणेन याति प्राणः प्राणं ददाति प्राणाय ददाति। प्राणो ह पिता प्राणो माता प्राणो भ्राता प्राणः स्वसा प्राण आचार्यः प्राणो ब्राह्मणः।।1।।* अर्थात् (हे नारद!) प्राण आशा से अधिक श्रेष्ठ है। जिस तरह रथ के पहिये के केन्द्र में 'अरे' प्रतिष्ठित रहते हैं, ठींक उसी तरह प्राण तत्व में सम्पूर्ण विश्व समाहित हैं प्राण अपनी ही शक्ति द्वारा प्रस्थान करता है, समाहित प्राण ही प्राण को प्रदान करता है तथा प्राण के लिये ही प्रदान करता है। प्राण ही पिता, प्राण ही माता, प्राण ही भाई, प्राण ही बहिन, प्राण ही आचार्य और प्राण ही श्रेष्ठ ब्राह्मण है।

स यदि पितरं वा मातरं वा भ्रातरं वा स्वसारं वाचार्यं वा ब्राह्मणं वा किंचिद्धृशमिव प्रत्याहधिक्तत्वाऽस्त्वित्येवैनमाहुः पितृहा वै त्वमसि मातृहा वै त्वमसि भ्रातृहा वै त्वमसि स्वसृहा वै त्वमस्याचार्यहा वै त्वमसि ब्राह्मणहा वै त्वमसीति।।2।। तात्पर्य है; यदि कोई (व्यक्ति) अपने पिता, माता, भाई, बहिन, आचार्य अथवा ब्राह्मण के प्रति अशिष्टतापूर्ण व्यवहार करता है, तो उसको देखने एवं सुनने वाले उसे अपमानित करते हुये कहते हैं कि तुझे धिक्कार है। सचमुच ही तू अपने माता-पिता को मारने वाला है, भ्रातृघाती है, बहिन की हत्या करने वाला है, आचार्य का हनन करने वाला है और तू निश्चय ही ब्रह्मघाती है।

अथ यद्यप्येनानुत्क्रान्तप्राणाञ्छूलेन समासं व्यतिषं दहेन्नैवैनं ब्रूयुः पितृहासीति न मातृहासीति न भ्रातृहासीति न भ्रातृहासीति न स्वसृहासीति नाचार्यहासीति न ब्राह्मणहासीति।।3।। परन्तु जिन लोगों के प्राण निकल गये हैं, उन माता, पिता आदि समस्त परिवारीजनों को यदि वह व्यक्ति शूल से संहृत कर एवं छिन्न-भिन्न करके जला देजा है (कपाल क्रिया आदि करता है), तो भी उसे कोई यह नहीं कहता है कि तू पिता का हत्यारा, माता का हत्यारा, बहिन का हत्यारा, भाई का हत्यारा एवं आचार्य का घात करने वाला अथवा ब्रह्म का घाती है।

प्राणो ह्येवैतानि सर्वाणि भवति स वा एष एवं पश्यन्नेव मन्वान एवं विजानन्नतिवादी भवति तं चेद्ब्रूयुरतिवाद्यसीत्यति-वाद्यस्मीति ब्रूयान्नपह्नवीत।।4।। अर्थात् (हे नारद!) इस प्रकार माता-पिता आदि के रूप में प्राण ही होते हैं। इसलिये जो (व्यक्ति) प्राणों को इस तरह से अनुभव करता है, चिन्तनयुक्त एवं दृढ़ निश्चयी होता है, वही 'अतिवादी' कहा जाता है। यद्यपि कोई भी उसे 'अतिवादी' कहे, तो फिर उसे यह स्वीकार करना चाहिये कि वास्तव में मैं अतिवादी हूँ। इस तथ्य को उसे छुपाना नहीं चाहिये।

इसी उपनिषद् के द्वितीय खण्ड, पृष्ठ 184 में *य यदि पितृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति तेन पितृलोकेन सम्पन्नो महीयते।।1।।* ऐसा प्राप्त होता है, जिसका तात्पर्य है; वह यदि (शरीर के परित्याग करने पर) पितृलोक की कामना वाला होता है, तो उसके द्वारा किय गये संकल्प से ही पितृगण वहाँ उपस्थिति होते हैं। पितृलोक से सम्पन्न होकर

वह महिमा का वर्णन करता है। *अथ यदि मातृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य मातरः समुत्तिष्ठन्ति तेन मातृलोकेन सम्पन्नो महीयते।।2।।* अर्थात् ..और यदि वह मातृलोक की इच्छा वाला होता है, तो उसकी दृढ़ इच्छाशक्ति से ही मातायें उपस्थित हो जाती हैं। मातृलोकों के सम्बन्ध से ही वह महिमा का अनुभव करता है।

अथ यदि भ्रातृलोककामो भवति संल्पादेवास्य भ्रातरः समुत्तिष्ठन्ति तेन भ्रातृलोकेन सम्पन्नो महीयते।।3।। तात्पर्य है; ..और यदि वह भ्रातृलोक की इच्छा वाला होता है, तो उसकी प्रचण्ड संकल्प शक्ति से ही समस्त भ्रातृसमुदाय वहाँ उपस्थित हो जाता है। उस भ्रातृलोक से सम्पन्न होकर वह महान् महिमा को प्राप्त करता है। *अथ यदि स्वसृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य स्वसारः समुत्तिष्ठन्ति तेन स्वसृलोकेन सम्पन्नो महीयते।।4।।* और यदि वह भगिनी लोक की कामना करने वाला है, तो उसकी दृढ़ इच्छा शक्ति से ही बहिनें वहाँ आ जाती है। उस भगिनी लोक से युक्त होकर वह महान् वृद्धि को प्राप्त होता है।

तथा साथ ही अध्याय-8, खण्ड-3, मंत्र-2, पृष्ठ 185 में *अथ यदि स्त्रीलोककामो भवति संकल्पादेवास्य स्त्रियः समुत्तिष्ठन्ति तेन स्त्रीलोकेन सम्पन्नो महीयते।।9।।* अर्थात् ...और यदि वह स्त्रीलोक की इच्छा वाला होता है, तो उसकी दृढ़ संकल्प शक्ति से ही समस्त स्त्रियाँ वहाँ उसके पास एकत्रित हो जाती हैं। उस स्त्रियों के लोक से युक्त वह वृद्धि को प्राप्त होता है।

इसी उपनिषद् के 12वें खण्ड, पृष्ठ 194 में आया है *एवमेवैष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते स उत्तमः पुरूषः स तत्र पर्येति जक्षत्क्रीडन्नममाणः स्त्रीभिर्वा यानैर्वाज्ञातिभिर्वा नोपजन ँ स्मरन्निद ँ शरीर ँ स यथा प्रयोग्य आचरणे युक्त एवमेवायमस्मिञ्छरीरे प्राणो युक्तः।।3।।* अर्थात् उसी तरह यह सम्प्रदाय (जीव) आकाश से वायु आदि की भांति इस शरीर से ऊर्ध्व की ओर उठकर परम ज्योति को पाकर अपने आत्मस्वरूप में केन्द्रित हो जाता है। वह ही उत्तम पुरूष है, ऐसी अवस्था में वह (जीव) हंसता, क्रीड़ा करता और स्त्री, यान अथवा ज्ञातिजनों (बन्धुओं) के साथ करता हुआ अपने साथ प्रकट हुये इस शरीर को स्मरण न करता हुआ, सभी ओर संचरित होता है। जैसे अश्व अथवा वृषभ गाड़ी में जुता रहता है, ठीक वैसे ही यह प्राण रथ स्थानीय शरीर में जुता हुआ है।

14वें खण्ड, पृष्ठ 195 में आया है *आकाशो वै नाम नामरुपयोर्निर्विहिता ते यदन्तरा तद्ब्रह्म तद्यृत ँ स आत्मा प्रजापतेः सभां वेशम प्रपद्ये यशोऽहं भवामि ब्राह्मणानां यशो राज्ञां यशो विशां यशोऽहमनुप्रापत्सि स हाहं यशसां यशः श्येतमदत्कमदत्क ँ श्येतं लिन्दु माभिगां लिन्दु माभिगाम्।।1।।* 'आकाश' इस नाम से श्रुतियों में प्रसिद्ध आत्मा नाम और रूप का निर्वाह करने वाला है। वे (नाम एवं रूप) जिस (ब्रह्म) के अन्तर्गत है, वही ब्रह्म है, वही आत्मा है और वही अमृत है। मैं प्रजापति के सभागृह को प्राप्त करता हूँ, यश रूप आत्मा हूँ, मैं ही ब्राह्मणों के यश, क्षत्रियों के यश एवं वैश्यों के यश को प्राप्त करना चाहता हूँ। मैं यशों का भी यश हूँ। मैं दन्तरहित होने पर भी 'अदत्तक' अर्थात् बिना दांतों के ही भक्षण करने वाले लालवर्ण युक्त श्वेत बिन्दु (पिच्छिल स्त्री चिह्न) को प्राप्त न करूँ अर्थात् स्त्री गर्भ में गमन न करूँ।

तृतीयोऽनुवाक, पृष्ठ 198 में *सह नौ यशः। सह नौ ब्रह्मवर्चसम्। अथातः स ँहिताया उपनिषदं व्याख्यास्यामः। पञ्चस्वधिकरणेषु। अधिलोकमधिज्यौतिषमधिविद्यमधिप्रजमध्यात्मम्। ता महास ँहिता इत्याचक्षते। अथाधिलोकम्। पृथिवी पूर्वरूपम्। द्यौरूत्तररूपम्। आकाशः संधिः।।1।। वायुः संधानम्। इत्यधिलोकम्। अथाधिज्यौतिषम्। अग्निः पूर्वरूपम्। आत्यि उत्तररूपम्। आपः संधिः। वैद्युतः संधानम्। इत्यधिज्यौतिषम्। अथाधिविद्यम्। आचार्यः पूर्वरूपम्। अन्तेवास्युत्तररूपम्। विद्या संधिः। प्रवचन ँ संधानम्। इत्यधिविद्यम्। अथाधिप्रजम्। माता पूर्वरूपम्। पितोत्तररूपम्। प्रजा संधिः। प्रजनन ँसंधानम्। इत्यधिप्रजम्।* ऐसा आया है, जिसका अर्थ है; हम दोनों (शिष्य और आचार्य) का यश साथ-साथ बढ़े, हम दोनों का ब्रह्मतेज भी साथ-साथ बढ़े। अब हम पाँच अधिकरणों में संहिता की -उपनिषद् की व्याख्या करते हैं। ये पाँच अधिकरण-अधिलोक, अधिज्यौतिष, अधिविद्य, अधिप्रज और अध्यात्म है। विद्वज्जन उन्हें महासंहिता कहते हैं। अब लोक सम्बन्धी संहिता का वर्णन करते हैं। इस पूर्वरूप पृथ्वी है। उत्तररूप द्युलोक है। पृथिवी और द्यु के बीच का अन्तरिक्ष इसका संधि रूप है। वायु संधान (संयोजक) रूप है। यह लोक सम्बन्धी संहिता है। अब ज्योति सम्बन्धी संहिता का वर्णन करते हैं। (पृथ्वी स्थित) अग्नि पूर्व रूप है। (द्युलोक स्थित) आदित्य-सूर्य उत्तर रूप है, जल इन दोनों का संधि रूप है। (अन्तरिक्ष स्थित) विद्युत इस संधि स्थान में संयोजक है। यह ज्योति सम्बन्धी संहिता है। अब विद्या सम्बन्धी संहिता का वर्णन करते हैं। गुरू इसका पूर्वरूप है। शिष्य उत्तररूप है और विद्या संधि रूप है प्रवचन संधि में संयोजक है। यह विद्या सम्बन्धी संहिता है। अब संतति (प्रजा) सम्बन्धी

संहिता का वर्णन करते हैं। माता पूर्व रूप है। पिता उत्तररूप है। सन्तान संधि रूप है। प्रजनन कर्म संयोजक है। यह संतति सम्बन्धी संहिता है।

एकादशोऽनुवाकः, पृष्ठ 202 में आया है *वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति। सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देव पितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्।।1।। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि। यान्यस्माकँ सुचरितानि तानि त्सयोपास्यानि।।2।। नो इतराणि। ये के चास्मच्छ्रेयाँसो ब्राह्मणाः तेषां त्वयाऽऽसने न प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्। अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्।।3।। ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः। अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तत्र वर्तेरन्। तथा तत्र वर्तेथाः। अथाभ्याख्यातेषु। ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तेषु वर्तेरन्। तथा तेषु वर्तेथाः। एष आदेशः। एष उपदेशः। एषा वेदोपनिषत्। एतदनुशासनम्। एवमुपासितव्यम्। एवमु चैतदुपास्यम्।।4।।* जिसका अर्थ है; वेद अध्यापन के बाद आचार्य आश्रम के विद्यार्थियों को शिक्षण देते हैं- सत्य बोलो। धर्म का आचरण करो। स्वाध्याय में प्रमाद न करो। आचार्य को अभीष्ट धन प्रदान करो। प्रजाओं (सन्तान) की परम्परा विच्छिन्न न होने दो। सत्य से न डिगो, धर्म से न डिगो, शुभ कर्मों में प्रमाद न करो, प्रगति के साधन न छोड़ो, शास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन में प्रमाद न करो। देव और पितृ कर्मों का त्याग न करो। माता-पिता को देव रूप में मानो। आचार्य को देवता समझो। अतिथि को देवरूप मानो। जो दोष रहित कर्म वर्णित हैं, उन्हीं का आचरण करो। अन्य का नहीं। हमारे (शास्त्रादि में वर्णित) जो श्रेष्ठ चरित्र है, उसी का उपासना करो, अन्य का नहीं। हमसे (स्वयं से) श्रेष्ठ जो ब्राह्मण (आचार्य आदि) आयें, उन्हें उत्तम आसन देकर विश्राम देना चाहिये। दानादि (श्रद्धा पूर्वक) देने योग्य है। बिना श्रद्धा के दान देने योग्य नहीं। आर्थिक स्थिति के अनुरूप दान देने योग्य है। लज्जा (सामाजिकता की शर्म) तथा (सिद्धान्त के) भय से भी दान देना उचित है। संविद्मैत्री आदि के निर्वाह के लिये देना चाहिये, यदि आपको कर्म और आचरण के विषय में किसी तरह का संदेह हो। (ऐसी स्थिति में) विचारशील, परामर्शदाता, आचरणनिष्ठ, निर्मल बुद्धि वाले धर्माभिलाषी ब्राह्मण से परामर्श करना चाहिये। वे जिस व्यवहार का आदेश दें, वैसा ही व्यवहार वहाँ करना चाहिये। किसी अपराध से लांछित व्यक्ति के विषय में कोई संदेह उपस्थित हो, तो विचारशील, परामर्श कुशल, आचरणनिष्ठ, निर्मल मतिवाले, धर्माभिलाषी ब्राह्मण से परामर्श करना चाहिये। वे जैसे व्यवहार का आदेश करें, वैसा ही व्यवहरा करना चाहिये। यही आपके लिये आदेश और उपदेश है। यही वेद आज्ञा है। यही ईश्वर का अनुशासन है। इन सिद्धान्तों की ही उपासना करनी चाहिये। यही उपास्य है।

''आचार्य अपनी ओर से अनुशासन समझाते हैं, किंतु शिष्यों को स्वयं तक सीमित नहीं रखते। शंका होने पर किसी धर्माचरण युक्त ब्राह्मण से परामर्श लेने का परामर्श देते हैं। ब्राह्मण संज्ञा उस व्यक्ति के लिये है, जो ज्ञानयुक्त और निस्पृह है। जिसने ज्ञान को धर्माचरण के रूप में अपने जीवन में उतार लिया है, वही व्यक्ति मोह और भय से मुक्त होकर सही परामर्श दे सकता है। आचार्य श्रेष्ठ जीवन-श्रेष्ठ सिद्धान्तों को ही उपास्य मानते हैं।''

निरालम्बोपनिषद्, पृष्ठ 224 में *अज्ञानमिति च रज्जौ सर्पभ्रान्तिरिवाद्वितीये सर्वानुस्यूते सर्वमये ब्रह्मणि देवतिर्यङ्नरस्थावरस्त्रीपुरूषवर्णाश्रमबन्धमोक्षोपाधिनानात्मभेदकल्पितं ज्ञानमज्ञानम्।।14।।* ऐसा प्राप्त होता है, जिसका तात्पर्य है; जिस प्रकार रस्सी में सर्प की भ्रान्ति होती है, उसी प्रकार सब में विद्यमान ब्रह्म और देव, पशु-पक्षी, मनुष्य, स्थावर, स्त्री-पुरूष, वर्ण-आश्रम, बन्धन-मुक्ति आदि सभी अनात्म वस्तुओं में भेद मानना ही 'अज्ञान' है। *पितृमातृसहोदरदारापत्यगृहारामक्षेत्रममतासंसारावरणसङ्कल्पो बन्धः।।19।।* अर्थात् माता-पिता, भ्राता, पुत्र, गृह, उद्यान तथा खेल आदि मेरे अपने हैं, यह सांसारिक विचार भी बंधन ही हैं।

प्रश्नोपनिषद्, पृष्ठ 231 में *तद्ये ह वै तत्प्रजापतिव्रतं चरन्ति ते मिथुनमुत्पाद्यन्ते। तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्य येषु सत्यं प्रतिष्ठितम्।15।।* ऐसा आया है, जिसका तात्पर्य है; इस प्रकार प्रजापति के इस व्रत पालन करने वाले पुरूष (कन्या-पुत्र रूप) मिथुन का उत्पादन करते हैं। तपस्वी और ब्रह्मचर्ययुक्त तथा सत्यावलम्बी पुरूष ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं।

मुद्गलोपनिषद् के तृतीय खण्ड, पृष्ठ 378 में आया है *तमेतमग्निरित्यध्वर्यव उपासते। यजुरित्येष हीदं सर्वं युनक्ति। सामेति छन्दोगाः। एतस्मिन्हीदं सर्वे प्रतिष्ठितम्। विषमिति सर्पाः। सर्प इति सर्पविदः। ऊर्गिति देवाः। रयिरिति मनुष्याः। मायेत्यसुराः। स्वधेति पितरः। देवजन इति देवजनविदः। रूपमिति गन्धर्वाः। गन्धर्वइत्यप्सरसः।।2।।* अर्थात् उसी (विराट् पुरूष) की उपासना समस्त अध्वर्युओं ने अग्निदेव के रूप में की है। यजुर्वेदीय याज्ञिक उस (देव) को 'यह यजुः है' ऐसा मानते हुये सर्व यज्ञीय कर्मों में नियोजित करते हैं। सामगान वाले उस (देव) को साम के रूप में जानते हैं। इसी (विराट् पुरूष) रूप में निश्चित ही वह सर्वत्र विद्यमान है। सर्प (गतिशील प्राणी) उसे (विराट् पुरूष को) विष रूप में स्वीकार करते हैं तथा सर्पवेत्ता (योगी) सर्प-प्राण-रूप से उसे प्राप्त करते हैं। देवगण उसे अमृत रूप में ग्रहण करते हैं तथा सामान्य जन इसे (जीवन) धन समझकर जीवनयापन करते हैं। असुर (इन्हें) माया के रूप में जानते हैं, पितर स्वधा (अर्थात् पितृ भोजन के रूप में) मानते हैं, देवोपासक इसे देव रूप में मानते हैं। गन्धर्वगण रूप-सौंदर्य के रूप में जानते हैं तथा अप्सरायें गन्धर्व के रूप में उस (विराट् पुरूष) को जानती हैं।

य एतदुपनिषदं नित्यमधीते सोऽग्निपूतो भवति। स वायुपूतो भवति। स आदित्यपूतो भवति। अरोगी भवति। श्रीमांश्च भवति। पुत्रपौत्रादिभिः समृद्धो भवति। विद्वांश्च भवति। महापातकात्पूतो भवति। सुरापानात्पूतो भवति। अगम्यागमनात्पूतो भवति। मातृगमनात्पूतो भवति। दुहितृस्नुषाभिगमनात्पूतो भवति। स्वर्णस्तेयात्पूतो भवति। वेदिजन्मग्नित्पूतो भवति। गुरोरशुश्रूषणात्पूतो भवति। अयाज्ययाजनात् पूतो भवति। अभक्ष्यभक्षणात् पूतो भवति। उग्रप्रतिग्रहात्पूतो भवति। परदादगमनात्पूतो भवति। कामक्रोध लोभमोहेर्ष्यादिभिरबाधितो भवति। सर्वेभ्यः पापेभ्यो मुक्तो भवति। इह जन्मनि पुरूषो भवति।।10।। जो (भी व्यक्ति) इस उपनिषद् का प्रतिदिन अध्ययन करता है, वह अग्नि की भांति पवित्र होता है। वह वायु की तरह शुद्ध होता है। वह आदित्य के समान प्रखर (गतिशील) होता है। वह सभी रोगों से रहित जो जाता है। वह श्री-सम्पन्न एवं पुत्र-पौत्रादि से समृद्ध हो जाता है। वह विद्वान हो जाता है। महान पातक (पाप) से पवित्र हो जाता है। अनाचरणजन्य दोष से मुक्त हो जाता है। वह माता के प्रति कदाचरण से मुक्त हो जाता है। (वह) पुत्री एवं बहिन के प्रति विकारों से मुक्त हो जाता है। सुवर्ण आदि धन की चोरी के पाप भावों से मुक्त हो जाता है। वेदाध्यायन करके उसे भूल जाने से उत्पन्न पाप से मुक्त हो जाता है। गुरू की सेवा-सुशुश्रा में उत्पन्न (आलस्य-प्रमादादि) पाप भावों से रहित हो जाता है। यज्ञीय कार्यों में अयाज्य (अपवित्र पदार्थों) के यजन आदि पापों से रहित हो जाता है। अभक्ष्य आहार आदि पाप प्रवृत्तियों से मुक्त हो जाता है। वह काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, क्रोधादि पापों से नहीं बंधता। (वह व्यक्ति) सभी पापों से रहित हो जाता है और इसी जन्म में ही पूर्ण पुरूष अर्थात् परमात्मा के ज्ञान से युक्त होकर पुरूष (श्रेष्ठ पुरूष या पवित्र) हो जाता है।

''उपनिषद् के इस वाक्य का अर्थ विवेकपूर्ण किया जाना चाहिये। बहुधा लोग इसका यह अर्थ लगाते हैं कि पाप वृत्तियों के वशीभूत होकर जो पापकर्म करता है, उसके दण्ड से मुक्त हो जाता है, लेकिन ऋषि कहते हैं कि वह ज्ञानी विभिन्न पाप वृत्तियों-अन्तरंग दोषों से मुक्त हो जाता है, न कि पाप कर्मों के दण्ड से। ज्ञानी अपनी ज्ञान दृष्टि से वास्तविकता को पहचान लेता है, इसलिये पाप वृत्तियों के प्रलोभन में फंसता ही नहीं है।''

मैत्रायण्युपनिषद्, पृष्ठ 388 में आया है *अथान्यत्राप्युक्तं शरीरमिदं मैथुनादेवोद्भुतं संविद्धयुपेतं निरय एव मूत्रद्वारेण निष्क्रान्त-मस्थिभिश्चित मांसेनानुलिप्तं चर्मणावबद्धं विण्मूत्रै पित्तकफमज्जामेदोवसाभिरन्यैश्च मलैर्बहुभिः परिपूर्ण कोश अवावसन्नेति।।4।।* तात्पर्य है; इसके अतिरिक्त एक अन्य स्थल पर यह भी संकेत मिलता है कि स्त्री-पुरूष के संयोग से जिस शरीर का प्रादुर्भाव होता है, वह चेतना शून्य है तथा नरक जैसा प्रतीत होता है। मूत्र द्वार से बहिर्गमन होने वाला यह शरीर हड्डियों के द्वारा गठित किया गया है। मांस से अनुलिप्त है तथा चर्म के द्वारा आबद्ध किया गया है। मल, मूत्र, पित्त, कफ, मज्जा, भेद, वसा आदि से युक्त है। इसके अतिरिक्त अन्य कई तरह के मलों से भी परिपूर्ण है। यह शरीर ऐसा लगता है कि सभी विकार युक्त पदार्थों का कोषागार ही है।

इसी उपनिषद् के पृष्ठ 395 में *अथान्यत्राप्युक्तं स्तनयत्येषास्य तनूर्या ओमिति स्त्रीपुंनपुंसकमिति लिङ्गवत्येषाथाग्निर्वायु-रादित्य इति भास्वत्येषाथ रूद्रो विष्णुरित्यधिपतिरित्येषाथ गार्हपत्यो दक्षिणाग्निराहवनीय इति मुखवत्येषाथ ऋग्यजुः सामेति विजानात्येषाथ भूर्भुवः स्वरिति लोकवत्येषाथ भूतं भव्यं भविष्यदिति कालवत्येषाथ प्राणोऽग्निः सूर्य इति प्रतापवत्येषाथान्नमापश्चन्द्रमा इत्याप्यायन-वत्येषाथ बुद्धिर्मनोऽहंकार इति चेतनवत्येषाथ प्राणोऽपानो व्यान इति प्राणवत्येके त्यजामीत्यूक्तैताह प्रस्तोतार्पिता भवतीत्येवं ह्याहैतद्वै*

सत्यकाम परं चापरं च यदोमित्येतदक्षरामिति।।5।। पुनः इसके बाद अन्यत्र कहा गया है कि इस (ब्रह्मा) का शरीर जो शब्द उचारित करता है, उसे ॐकार कहते हैं। यह (ॐकार) स्त्री-पुरूष एवं नपुंसक इन तीनों लिङ्गोंसे युक्त है। अग्नि, वायु एवं सूर्य के रूप में यह प्रकाश देने वाला है तथा ब्राह्मा, रूद्र औ विष्णु के रूप में अधिपति स्वरूप है। गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आहवनीय ये ही तीनों अग्नियाँ उसके तीन मुख है तथा ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद को भी वह जानने में समर्थ है। भूः, भुवः और स्वः ये तीन लोक भी इसी के रूप में है। उस ॐकार रूप ब्रह्म के भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीन काल है। प्राण, अग्नि और आदित्य उसके प्रताप हैं। अन्न, जल और चन्द्रमा उसके पोषक तत्व है। बुद्धि, मन और अहंकार ये तीनों उसकी चेतना है तथा प्राण, अपान एवं व्यान उसके प्राण है। ऐसा ही अनेकों ने कहा है कि यह स्तुति करने वाला तथा स्वयं अर्पित करने वाला कहा गया है। ऐसा श्रुति का वचन है। हे सत्यकामना वाले यही (ॐकार) पर एवं अपर रूप ब्रह्म है। यह ॐकार ही अक्षर है।

श्वेताश्वतरोपनिषद्, पृष्ठ 41666 में *त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी। त्वं जीर्णो ६दण्डेन वंचसि त्वं जातो भवयि विश्वतोमुखः।।3।।* अर्थात् (हे परमेश्वर!) आप ही स्त्री और आप ही पुरूष हैं। आप ही पुत्र अथवा स्त्री है, आप ही वृद्ध होकर लाठी के सहारे चलते हैं तथा (प्रपंच रूप में) जन्म लेकर सर्वत्र विविध रूपों में विद्यमान है।

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः। यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते।।10।। यह जीवात्मा न तो स्त्री है, न पुरूष है और न ही नपुंसक है। यह जिस-जिस शरीर को ग्रहण करता है, उसी-उसी से सम्बद्ध हो जाता है।

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,11-13
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 06 सितम्बर 2015

बिलासपुर जिले के स्वातंत्र्यपूर्व व स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक भूमिका

डॉ. पी.सी. घृतलहरे*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *बिलासपुर जिले के स्वातंत्र्यपूर्व व स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक भूमिका* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *पी.सी. घृतलहरे* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सारांश

देश में चलाये जा रहे विभिन्न स्वतंत्रता आन्दोलनों में बिलासपुर के लोगों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। भारत छोड़ो आन्दोलन में भी बिलासपुर के व्यक्तियों का काफी योगदान रहा। बंगभंग के समय सम्पूर्ण देश में जो क्रांति की लहर फैली उसमें जिले में स्वतंत्रता आन्दोलन का नेतृत्व ताराचंद ने किया। बिलासपुर में राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रेरक स्तम्भ ई0 राघवेन्द्र राव थे। बंगभंग से लेकर आजादी एवं आजादी से लेकर सत्तर के दशक तक बिलासपुर जिला राजनीतिक रूप से काफी सक्रिय रहा। स्वतन्त्रता आंदोलन रहा हो या आजादी के बाद आदेश सरकार में मंत्री की भूमिका की बात रही हो, दोनों ही स्थितियों में जिला बिलासपुर, राजनीतिक हलचल से परिपूर्ण था।

कूटशब्द; ''बिलासपुर जिला राजनीतिक रूप से हमेशा सक्रिय''

महान विप्लव के बाद लोगों ने अपनी भावनाओं को ब्रह्म-समाज और आर्य-समाज जैसे धार्मिक तथा सामाजिक सुधारवादी संगठनों के माध्यम से व्यक्त किया। यद्यपि आर्य-समाज की स्थापना बाद में हुई, फिर भी जिले में कतिपय अन्य संस्थाओं का जन्म पहले ही हो चुका था। ये बुद्धि प्रकाश सभा, रीडिंग क्लब, चारापारा क्लब, बंगाल नागपुर रेल्वे संस्था बिलासपुर आदि थी। इन सभी ने जिले में जन जागृति लाने में कुछ हद तक अपना योगदान दिया।

यद्यपि इंडियन नेशनल कांग्रेस का जन्म 1885 में ही हो चुका था तथा देश के विभिन्न नगरों में राजनैतिक सम्मेलन आयोजित किए जा रहे थे। बंगभंग के समय सम्पूर्ण देश में जो क्रांति की लहर फैली उसमें जिले में स्वतंत्रता आन्दोलन का नेतृत्व ताराचंद ने किया। जिले में राजनैतिक रूप से जागृत प्रथम कार्यकर्ता होने का श्रेय इन्हें जाता है। इन्होंने छात्रों तथा श्रमिकों को राजनैतिक शिक्षा प्रदान की।

* प्राचार्य, एम. जी. शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय [खरसिया] रायगढ़ (छत्तीसगढ़) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

देश में चलाये जा रहे विभिन्न स्वतंत्रता आन्दोलनों में यहाँ के लोगों का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। जिले में असहयोग आन्दोलन का सूत्रपात रतनपुर से हुआ। सदाशिव राव हरपाल ने आन्दोलन का नेतृत्व किया। मई 1921 में जबलपुर में हुए हिन्दी मध्य प्रान्त राजनैतिक सम्मेलन में नई भावना जागृत हुई। बिलासपुर के डॉ0 राघवेन्द्र राव ने इस सम्मेलन की अध्यक्षता की जिसमें बड़ी संख्या में प्रतिनिधि तथा दर्शक उपस्थित हुए। डॉ0 राघवेन्द्र राव ने असहयोग आन्दोलन नीति का इस आधार पर समर्थन किया कि यह हमारी जाति की परम्पराओं तथा नैतिकता पर आधारित है। इस समय के प्रमुख राष्ट्रवादी मुंगेली के गनपत लाल, कटघोरा के मनोहर लाल शुक्ला, जांजगीर के हाफिज जी तथा रतनपुर के बापू पुरूषोत्तम दास थे।

''बिलासपुर में राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रेरक स्तम्भ ई0 राघवेन्द्र राव थे। राव के अलावा कुंज बिहारी अग्निहोत्री और बैरिस्टर छेदीलाल सिंह की महत्वपूर्ण भूमिका रही। ई0 राघवेन्द्र राव का राजनीतिक रंगमंच में आना ही बिलासपुर में राष्ट्रीय जागृति का शुभारम्भ था। उन्होंने अंग्रेजी हुकूमत और नौकरशाही की कभी परवाह नहीं की। इन दिनों खान बहादुर जफर अली बिलासपुर म्युनिसिपल के प्रेसीडेंट थे। जफर एक स्वेच्छाचारी प्रवृति के अधिकारी थे और उनका व्यक्तित्व भी दबंग था। बड़े-बड़े लोग उनकी सलामी और जी हुजूरी करते थे। किन्तु राघवेन्द्र ने खुला बहिष्कार किया।''(1)

1920 में ही बिलासपुर में प्रथम वार्षिक जिला सम्मेलन आयोजित हुआ। इस सम्मेलन में राष्ट्रीय जागृति स्पष्टतः दृष्टिगत हुई। गांधी जी के असहयोग आन्दोलन की घोषणा ने लोगों के दिल-दिमाग में चिनगारी पैदा कर दी। फलस्वरूप इस जिले में छात्रों ने एक संगठन बना लिया जो वानर सेना के नाम से विख्यात था। इसके संगठन कर्त्ता वासुदेव देवरस थे। बलिराम दुबे इसके संयोजक थे और यतियतन लाल जैन पथ प्रदर्शक थे।

जब राष्ट्रीय आन्दोलन जिले में अपनी जड़ें जमा रहा था तभी दुर्भाग्यवश छिन्दवाड़ा के कुछ अधिवेशन में हिन्दी मध्य प्रान्त समिति में बिखराव शुरू हुआ। डॉ0 राघवेन्द्र राव ने समिति के अध्यक्ष पद से अपना त्याग पत्र दे दिया और उनके स्थान पर पं0 सुंदरलाल तपस्वी को अध्यक्ष बनाया गया।

1930 में ठाकुर प्यारे सिंह की अध्यक्षता में एक राजनीतिक सम्मेलन हुआ। सम्मेलन में, टाऊन हाल में निर्मित बिल्डिंग में तिरंगा झण्डा फहराने का फैसला किया गया। 04 अगस्त 1930 को टाऊन हाल में झण्डा फहराया गया, जो 03 दिनों तक फहराता रहा। अंततः मामला डी0एस0पी0 कौन्सिल को रिपोर्ट किया गया। पुलिस झण्डा उतारकर वापस आ रही थी, तभी छात्रों के समूह ने गाड़ी रोक ली और सिपाहियों को पीटा। इस कारण से कुछ व्यक्तियों को सजा भी हुई। 05 मार्च 1931 को गांधी इरविन समझौता होने पर सविनय अवज्ञा आन्दोलन वापस ले लिया गया और बिलासपुर जिले में भी आन्दोलन समाप्त हो गया।

''लंदन में हुई गोलमेज परिषद् से लौटने पर 04 जनवरी 1932 को महात्मा गांधी को पुनः गिरफ्तार कर लेने के तुरंत बाद सविनय अवज्ञा आन्दोलन का दूसरा चरण प्रारम्भ हुआ। किन्तु इस समय सरकार सभी दंडात्मक कदम उठाने तैयार थी। बिलासपुर जिले में भी गैर कानूनी इन्सटीगेशन (क्रमांक तीन सन् 1932) लागू किया गया था। उसके बाद जिले में मोले स्टेशन एण्ड बायकाटिंग आर्डिनेंस (क्रमांक पांच सन् 1932) भी लागू किया गया। चूंकि ठाकुर छेदीलाल तथा कांग्रेस के स्वयंसेवकों ने सदर बाजार, बिलासपुर में विदेशी वस्तुओं की दुकान पर धरना दिया था, अतः बिलासपुर के प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट ने 25 फरवरी 1932 को उन पर 250 रूपये का जुर्माना किया।''(2)

29 मई को नागपुर में महाकोशल, नागपुर तथा विदर्भ का एक संयुक्त राजनैतिक सम्मेलन आयोजित किया गया। सम्मेलन का उद्घाटन घनश्याम सिंह गुप्ता द्वारा किया जाना था। किन्तु उनके गिरफ्तार हो जाने के कारण अध्यक्षता करने का कार्य छेदी लाल को सौंपा गया। जब छेदीलाल ने अध्यक्षीय भाषण पढ़ना प्रारम्भ किया, तब उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया और उन पर मजिस्ट्रेट ने 500 रूपये का जुर्माना किया। बाद में सविनय अवज्ञा आन्दोलन वापस ले लिया गया। इसके बाद नेताओं ने लोगों की आजादी की भावी लड़ाई के लिए संगठित करना प्रारम्भ कर दिया।

बिलासपुर में 02 अप्रैल 1941 को सत्याहियों का एक जत्था युद्ध विरोधी भाषण देते हुए और नारे लगाते हुए पैदल ही दिल्ली रवाना हुए। इन सत्याग्राहियों में राजाराम साहू और रामेश्वर प्रसाद साहू भी सम्मिलित थे, जिन्हें 08 अगस्त 1941 को ललितपुर में गिरफ्तार कर लिया गया।

भारत छोड़ो आन्दोलन में भी बिलासपुर के व्यक्तियों का काफी योगदान रहा। 15 अगस्त 1942 को बिलासपुर में कालीचरण तिवारी की अध्यक्षता में एक विशाल सभा आयोजित किया जाना था किन्तु जिला प्रशासन को सूचना प्राप्त होने पर इस सभा को गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया। इसके बावजूद सभा आयोजित की गई। इन्हीं दिनों अकलतरा के पं0 लाल जी हाथ में तिरंगा लिए क्रांति अलख जगाने शिवरीनारायण गए साथ में कपिलनाथ जी थे।

इस प्रकार सारे जिले में आन्दोलन का माहौल था। तरूणों की टोलियाँ निर्भीकता से इधर-उधर घूमती और शासन विरोधी परचे लगाती। गिरफ्तारियाँ व रोज की सभाएँ आम घटना हुईं। रतनपुर, मुंगेली में छुटपुट वारदातें हुईं। मुंगेली के श्रीवास ने देवरी गाँव के लोगों के साथ सत्याग्रह किया।

''15 अगस्त 1947 को म. प्र. के मुख्यमंत्री पं0 रविशंकर शुक्ल बने। ये छत्तीसगढ़ के प्रमुख नेता के रूप में विख्यात रहे।''[3]

बिलासपुर में स्वतंत्रता दिवस समारोह मुख्यमंत्री के संसदीय सचिव पं0 रामगोपाल तिवारी के आगमन से प्रारम्भ हुआ। स्वागत के लिए बड़ी संख्या में अधिकारीगण, नेता, जनता, शिक्षक इत्यादि एकत्रित थे। नगर में 42 स्वागत द्वारों पर नारे लिखे गए थे। रात्रि 11.30 बजे नगर में शहनाई वादन हुआ और 62 राउण्ड फायर किए गए। उसी समय 02 मिनट तक रेल्वे इंजिन और स्थानीय भोंपू बजते रहे। संसदीय सचिव ने ध्वजारोहण के पश्चात् संक्षिप्त भाषण में ईश्वर को धन्यवाद देते हुए महात्मा गांधी को सम्मान अर्पित किया। पूरा शहर झण्डों, तोरण एवं नगर द्वारों से सुसज्जित था तथा शहर में स्वतंत्रता दिवस समारोह के उपलक्ष्य में सर्वत्र मांगों का आयोजन था। तहसील मुख्यालयों में पृथक स्थानीय कार्यक्रम आयोजित किए गए थे। जिले के हर गाँव में भी शासकीय स्तर पर कार्यक्रम निर्धारित किए गए।

तत्कालीन आंकड़ों के अनुसार, ''प्रदेश के 40 लोकसभा क्षेत्रों में से 03 लोकसभा क्षेत्र एवं 320 विधानसभा क्षेत्रों में से 19 विधानसभा क्षेत्र बिलासपुर जिले में थे।''[4] जिले के जांजगीर लोकसभा क्षेत्र में 08 विधानसभा क्षेत्र आते थे जिनके नाम रामपुर, कटघोरा, तानाखार, मस्तूरी, सीपत, अकलतरा, चांपा और सक्ती हैं। इसी प्रकार बिलासपुर लोकसभा के अन्तर्गत मरवाही, कोटा, लोरमी, मुंगेली, जरहागांव, तखतपुर, बिलासपुर, बिल्हा कुल 08 थे। उस समय सारंगढ़ ऐसा लोक सभा क्षेत्र था जिसमें 03 जिले के विधानसभा क्षेत्र सम्मिलत थे- रायपुर जिला से पलारी, कसडोल, भटगांव; रायगढ़ जिला से सरिया, सारंगढ़ एवं बिलासपुर जिला से पामगढ़, मालखरौदा, चन्द्रपुर कुल 08 थे। यहाँ विशेष उल्लेखनीय यह है कि 03 जिलों का समावेश किया गया है लेकिन अधिकांशतः बिलासपुर जिले के प्रतिनिधि ही निर्वाचित हुए हैं। जैसे 1977 में गोविन्द राम मिरी; 1980, 1984, 1989, 1991, 1993 में श्री परसराम भारद्वाज जो राहौद जिला बिलासपुर के निवासी हैं। इस प्रकार सारंगढ़ लोकसभा से जिला बिलासपुर के ही प्रतिनिधि चुनते आये हैं। 19 विधायकों और 03 सांसदों को निर्वाचित करने वाले बिलासपुर जिला का प्रदेश की राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इन विधायकों में कई विधायक म. प्र. शासन में महत्वपूर्ण मंत्री पद पर भी आसीन रहे हैं।

बिलासपुर की प्रगति और विकास को लेकर अलग- अलग मत हो सकते हैं। कुछ लोग यह मान सकते हैं कि पर्याप्त प्रगति हुई है, कुछ इसे पर्याप्त नहीं मान सकते। इसके बीच पिछड़ेपन की भावना का बने रहना, इस क्षेत्र की राजनीति का मुद्दा बना हुआ था। राजनैतिक विचारधारा में प्रारम्भ से ही बिलासपुर जिला, कांग्रेस के प्रभाव में और वर्चस्व में बना रहा। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में कांग्रेस और स्वराज्य पार्टी का प्रभाव था। आजादी के पहले दशक में समाजवादी, प्रमुख विपक्ष था। 1962 के आम चुनाव के बाद जिले में जनसंघ का प्रभाव बढ़ा और 1967 के चुनाव में जनसंघ, प्रमुख विपक्षी दल बन गया। इस प्रकार राष्ट्रीय स्तर के दलों में जो परिवर्तन हुआ, वह बिलासपुर में भी देखने को मिला।

संदर्भ

[1]महाबीर त्यागी -छत्तीसगढ़ का इतिहास, पृष्ठ संख्या 11

[2]महाबीर त्यागी -छत्तीसगढ़ का इतिहास, पृष्ठ संख्या 30-35-40

[3]डॉ0 अशोक शुक्ल -छत्तीसगढ़ का राजनैतिक इतिहास एवं राष्ट्रीय आन्दोलन, पृष्ठ संख्या 226

[4]*संदर्भ मध्यप्रदेश*- देशबंधु, प्रकाशन रायपुर 1996, पृष्ठ संख्या 115

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,18-26
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 29 सितम्बर 2015

वियोगी हरि का कवि-कीर्त्तन [सूत्रात्मक आलोचना एवं इतिहास बोध का संगम]

डॉ. विकास कुमार सिंह*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *वियोगी हरि का कवि-कीर्त्तन [सूत्रात्मक आलोचनात्मक एवं इतिहास बोध का संगम]* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *विकास कुमार सिंह* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

हिन्दी साहित्य में वियोगी हरि जी का स्थान एक सशक्त गद्यकार, निर्विकार समाज सेवी एवं सहृदय कवि के रूप में है। हरि जी का काव्य साहित्य बहुत ही समृद्धि एवं उच्च कोटि का है। वियोगी हरि ने आदिकाल के संस्कृत एवं हिन्दी कवियों से लेकर आधुनिक काल तक के कवियों की एक लम्बी परम्परा का दस्तावेज बड़ी आस्था के साथ तैयार किया, जो उनकी रचना 'कवि-कीर्त्तन' में नजर आता हैं। वे नये-नये विषयों को नयी परम्परा से जोड़कर अपनी कविता लिखते हैं।

कीर्त्तन नवधा भक्ति का आकर्षक सोपान है। यह अपने आराध्य के गुणगान की तन्मयता से आपूरित गीतमयी अभिव्यक्ति है। भारत देश में इष्ट के कीर्त्तन की शाश्वत परम्परा जन मानस के कण्ठ से प्रवाहित होकर जीवन को सरस और उर्वर बनाती रही है। हरि जी ने कवि-कीर्त्तन की रचना द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि कवि भी कीर्त्तन का आलम्बन है, वे साधक उनके पूज्य हैं इसलिए वे उसके जीवन और रचनाकर्म का अनुसन्धान करते हैं और मुग्ध होकर कीर्तनियों की तरह गुणगान करते हैं। कीर्त्तन एक ऐसी परम्परा है, जिसमें किसी के गुणों का बखान सूत्र वाक्य में किया जाता है। वियोगी हरि जी कवि के बखान एवं श्रेणी विभाजन से ऊपर उठकर उसके रचनाक्रम, रचनाभूमि, समाजिक भूमिका के साथ उसके सार भौतिक तत्वों का काव्य पंक्तियों में संकेत करते चलते हैं। अभिव्यक्ति की नवीनता और समकालीन कवियों के बीच रचनाकार के स्थान की चर्चा छंदोंबद्ध होकर आकर्षक तो होती है, साथ-साथ कवि के सृजन यात्रा के स्वतंत्र मूल्यांकन पर जोर देकर उनकी दृष्टि एवं सहृदय आलोचना का आधार बन जाती है। सूत्रात्मक आलोचना की शुरुआत आम जनता से शुरू होती है। जनता द्वारा किसी भी व्यक्ति, वस्तु, स्थान आदि के विषय में अपने भाषा में उसके गुणदोषों को कम से कम शब्दों में व्यक्त करने की एक आदत सी रही है। अतः सूत्रात्मक वाक्यों की उत्पत्ति किसी व्यक्ति विशेष की खोज नहीं हैं, अपितु आम जन

* [पोस्ट डॉक्टोरल फेलोशिप] हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल) E-mail : vikas.bhu.vns@gmail.com

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

की साधारण बोल-चाल की भाषा है। जैसे- ''सूर सूर, तुलसी शशि, उडगन केशवदास। अब के कवि खद्योत सम, जहँ-तहँ करत प्रकाश।।''

सूत्रात्मक शैली की उत्पत्ति ही साधारण जनता से है। अतः सीधे और कम शब्दों में अपनी बात रखना इसकी प्रमुख विशेषता है। जन मानस अपने आराध्य एवं इष्ट दोनों के गुणगान में उनके गुणों एवं नाम का स्मरण सूत्रात्मक शैली में कीर्त्तन के माध्यम से करता है।

वियोगी हरि जी सूत्रात्मक शैली से सिर्फ सभी कवियों, राजाओं एवं उनकी भाषा की प्रशंसा एवं विशेषता नहीं गिनाते हैं बल्कि उनके काव्य शैली, गुणों एवं दोषों का भी विश्लेषण करते हैं। उनकी रचनाओं के सम-सामयिक संदर्भ एवं मूल भाव को व्यक्त करते हैं। सूत्रात्मक वाक्यों द्वारा किसी भी कवि के काव्य की केन्द्रीय संवेदना समझना हरि जी की एक विशेष शैली बन गयी है। सूत्रात्मक शैली द्वारा वियोगी हरि जी चार छः पंक्तियों में ही किसी की भी विशिष्टता, शैली एवं महत्व बड़ी सरलता से व्यक्त कर देते हैं। सूत्रात्मक आलोचना, को अपने काव्य का एक विशिष्ठ माध्यम बनाकर हरि जी ने जैसा कीर्त्तन प्रस्तुत किया है, शायद ही हिन्दी क्या किसी भी भाषा के साहित्य में ऐसा उदाहरण मिलता हो। सूत्रात्मक शैली की सबसे बड़ी विशेषता उसके कम शब्दों द्वारा अधिक समझाने या कह जाने का गुण है। जिसको वियोगी हरि जी ने बखूबी से निभाया है। कम पंक्तियों में किसी कवि के देश, काल, समय के विषय में, उसके काव्य की विशेषता एवं शैली सम्बन्धि सभी बातों का सार परोस देते हैं। जो पाठक के लिए किसी कुंजी में कम नहीं है।

हरि जी हिन्दी के पहले, संस्कृत, ब्रज, प्राकृत एवं अपभ्रंश के कवियों की प्रसंशा एवं उनके योगदान को अपने कवि कीर्तन में सूत्रात्मक आलोचना के माध्यम से व्यक्त करते हैं। वे इस भाषाओं के योगदान एवं मिश्रित संस्कृति के बारे में कहते हुए लिखते हैं- ''जदपि संसकृत सब्द, जगत- सिरमौर रसीले,/ पै प्राकृत के अंग, ताहु ते अधिक छबीले। पुरूष संसकृत नवल, अहै तौ प्राकृत नारी,/ अधिक ललित लावन्य-माधुरी या ने धारी।।''[1]

वे कहते हैं कि प्राकृत संस्कृत का ही एक अंग है। जो अधिक रूचिकर है। संस्कृत एक पुरुष है तो प्राकृत उसकी सी, जो अधिक माधुर्य एवं लावन्य से भरी है। वे प्रकृति एवं अपभ्रंश की बात करते हुए चंदबरदायी जी के समय काव्य एवं शैली संबंधी विशेषता को सूत्रात्मक शैली में कहते हैं- ''चन्द चन्द-सम भयो भाषा-कवि-नायक,/ जाकी कीर्ति अमन्द, कला चौसठहु विनायक। पृथ्वीराज को बाहु दाहिनो समर-सहायक,/ रच्यो रायसो महाकाव्य प्रतिभा-परिचायक।।''[2]

चन्द, चन्द्रमा के समान भाषा के प्रथम कवि है, जिनकी कीर्ति कभी मन्द नहीं पड़ने वाली। जो राजा पृथ्वीराज के साथ युद्ध में भी हिस्सा लेते हैं और रासो जैसी रचना की भी रचना करते हैं। चन्दबरदायी का कीर्तन करते हैं। वहीं विद्यापति के पदों की विशेषता बताते हैं। उनको ब्रजभाषा-मैथिली एवं अपभ्रंश काल के कवि के रूप में दर्शाते हुए कहते हैं- ''जय विद्यापति सुकवि दिव्य रस निधि-बरसावन,/ रहस-पदावलि बिरचि भावना-पथ-दरसावन,/ ब्रजभाषा-मैथिली-विमिश्रित कल कविता के,/ बसीकरन मनहरन रसीले पद हैं जाके।।''[3]

हरि जी अमीर खुसरो को उसके कविता काल संवत् 1330 के हिन्दु-मुस्लिम एकता के संरक्षक के रूप में देखते हैं। उनको हिन्दी एवं पारसी भाषा के साहित्य को एक जगह लाकर मिलाने का श्रेय देते हुए कहते हैं कि- ''खुसरो सुकवि आवीन-तासु जस को न कहैगो!/ जोलौं हिन्दू हिन्दवि, तोलौं नाम रहैगो। 'खालिक बारी' सिरजि एकता को जस लीनों,/ हिन्दी-पारसि दोउ लाय गँठजोरा कीनों।।''[4]

अपने कवि-कीर्त्तन में कवि ने भक्तिकालीन सगुण एवं निर्गुण दोनों विचार-धाराओं के कवियों का उल्लेख किया है। उनके समय को दर्शाया है, उसकी रचना एवं उसकी विशेषताएँ शैली आदि को बताया है। सूत्रात्मक शैली द्वारा कवि के जीवन-परिचय, उनके गुरु, जन्म स्थान एवं रचनाओं के नाम भी बता जाते हैं। उनकी यह कृति 'कवि-कीर्त्तन' सिर्फ कीर्त्तन नहीं है, क्योंकि कीर्त्तन में गुणों का बखान किया जाता है, किसी के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की जाती है। जबकि हरि जी कवि की सूत्रात्मक आलोचना करते हैं। उनके गुणों के साथ-साथ आलोचना का भाव भी पदों में दिखता है। वे भक्तिकाल में कबीरदास, नामदेव, चैतन्य महाप्रभु, बल्लभाचार्य महाप्रभु, मीराबाई, सूरदास, गदाधर भट्ट, नन्ददास, गोस्वामी हितहरिवंस, मलिक मुहम्मद जायसी, कृपाराम, स्वामी हरिदास, हरीराम ब्यास, श्री भट्ट गोस्वामी तुलसीदास, आदि का वर्णन अपने सूत्रात्मक शैली में प्रस्तुत करते हैं। कबीर का कीर्त्तन करते हुवे उन्हें 'भाषा-कवि-सम्राट' की उपाधि प्रदान करते हैं। जो निगमागम के सारतत्व के प्रेरणा के

रूप में है। उनका धर्म सच्चाई है और सत्य को सदैव प्रखर एवं प्रचंड रूप में व्यक्त करने वाले कवि है। ''भाषा-कवि सम्राट जुलाहा दास कबीरा,/ श्री रामानँद सिष्य भक्त-भूषन मति धीरा;/ रचना या की हृदय चुटीली नेक न जूठी/ अति प्रचंड पाखंड खंडि कै सत्य बतायो/ साखी साँची कही धरम को मरम जतायो।''[5]

नामदेव (संवत् 1490) का कवि-कीर्त्तन करते हुए उसके गुरु के बारे में बताते है, जिनका नाम श्री ग्यानदेव है जो विष्णु स्वामि संप्रदाय से सम्बंधित हैं। नामदेव की कविता भागवत प्रेम को आधार बना कर की गयी है। कविता की भाषा ब्रज है और पद सुगमता से समझ आने योग्य है। ''नामदेव श्रीग्यानदेव को सिष्य रंगीलो,/ भक्त-सिरोमनि सुकवि भागवत प्रेम-पगीले। परम मनोहर सुगम सुरचना भक्ति-दायिनी,/ ब्रजभाषा-सिंगार-सार रस मुक्ति-दायिनी।''[6]

सूत्रात्मक शैली में वियोगी हरि जी चैतन्य महाप्रभु के ग्रन्थ, उनकी शिष्य परिपाटी एवं काव्य गुणों की बखान करते हैं। जो रूप गोसाई के सहोदर भ्राता थे। इन्होंने विदग्ध माधव नाटक, हंसदूत काव्य पदावली, भक्ति, संदर्भ प्रभृति, षट्संदर्भों तथा अन्य, पचासों ग्रन्थ की रचना की है। उनकी विशेषता इन चार पंक्तियों में वो करते हुऐ कहते हैं- ''जयति महाप्रभु गौरकृष्ण-पद पंकज पावन,/ जासु कृपा ते दिव्य ग्रन्थ प्रगटे मनभावन। जाके सिष्य प्रधान सनातन रूप गुसाई,/ रचना जिन की भावभरी भावुक जन ताई।।''[7]

वे भक्तिकाल के कवयित्रियों में मीरा का वर्णन करते हैं और सूत्रात्मक शैली में पूरा उनका इतिहास ही बता देते हैं। उन्हें कलयुग की गोपी कहते हैं। कृष्ण भक्ति रूपी जल में रहने वाली मछली की उपमा देते हैं जो सब कुछ छोड़ भक्ति में लीन हो जाती हैं। विष को भी भगवान् का चरणामृत मानकर पी जाती हैं उनको कुछ भी नहीं होता। ऐसा विश्वास है कृष्ण पर उनको। कृष्ण को आधार बना ओम और विरह के पदों की रचना करती हैं।

''कलियुग मीरा भई गोपिका द्वापर जैसी,/ कृष्ण-भक्ति-सर-लीन मीन है नहिं ऐसी। राणा ने विष दियो पियो चरनामृत करिकै,/ प्रेम-बिरह पद रचे लालगिरिधर-रंग राची।।''[8]

कृष्णभक्त कवियों में वियोगी हरि जी सूरदास जी से बहुत प्रभावित थे। सूरदास को व्रजभाषा मंडल के सबसे बड़े कवि के रूप में प्रस्तुत किया है। उनको महाकवि की उपाधि प्रदान किया है। श्रीकृष्ण के प्रेम रूपी प्रकाश करने वाला 'दूसरा सूर्य' की उपाधि देते है। सूरसागर के सवा लाख पदों की विशेषता बताते हुवे उसकी उपमा, रूपक, व्यंजना एवं लक्षणा आदि शक्तियों का महाकाव्य बताते है। जिसमें सूरदास निपुण थे। वे ऐसे भक्ति रूपी सागर में भक्त को ले जाते है जहाँ वह भक्त रूपी रस से अघा (मन को संतोष मिलना) जाता है। उसी भक्ति में सूरदास जी राधा और कृष्ण के पावन प्रेम से भक्त को परचित कराते है। जिससे भक्तगण कृष्ण भक्ति के इस महासागर में मछली की भाँति मग्न होकर उनके अनेकों रूपों का रसा-स्वादन करते है। उनको तनिक भी उबन नहीं होती। सूरदास जी का काव्य-कौशल देखकर अच्छे-अच्छे कवि आश्चर्यचकित हो जाते है। सूरसागर में कृष्ण के प्रति उनका वात्सल्य भाव देख ऐसा जान पड़ता है कि चूने हुऐ कलियों एवं फूलों की माला है। वियोगी जी कहते है कि ये सच है कि सूरदास, भगवान कृष्ण के साथ सदा खेले है। अपने सूत्रात्मक शैली में हरि जी कहते है कि- ''ब्रजभाषा-कवि-मंडल-मंडन सूर महाकवि,/ कृष्ण-प्रेम परकासकरन कैधों दूजौ रवि। या सागर में भरयो भक्ति जल बिमल अगाधा,/ गूँथी वत्सल-भाव-कंज-कलियन की माला,/ साँचेहु तो सँग सूर। सदा खेल्यो नंदलाला।।''[9]

प्रेम-बिरह के गुणों का बखान करते उनकी परम्परा एवं उनके गुरुओं को भी बताते है। तत्कालीन परिस्थिति एवं वातावरण का भी खाका खींच देते हैं। उनकी रचनाओं के साथ उसकी विशेषता भी बड़ी सटीक ढंग से प्रस्तुत कर देते हैं। गदाधर भट्ट और नन्ददास जी के काव्य महत्व को बताते हुऐ कहते है कि- ''भट्ट गदाधर गौर महाप्रभु को अनुगामी,/ ब्रज-बल्लभ अनुरक्त भक्त पूरन निहकामी। नंददास बिठलेस गुसाई सिष्य रसिकवर,/ 'पंचाध्यायी' 'भँवरगीत' रचि भो अजरामर। अनुप्रास माधुर्य ओज रस सिंधु बहायो,/ 'सब कवि गढ़िया नंददास जड़िया' जु कहायो।।''[10]

वियोगी हरि जी कवियों के काव्य रचनाओं एवं उनके जीवन से सम्बंधित सभी जानकारी सूत्रवाक्यों में दे जाते है। उनके बाद उनकी उपलब्ध साहित्य के विषय में भी संक्षेप में बता जाते है। मूल कृति का आधार भी बता देते है। भक्तिकाल में वे निर्गुणमागएँ कवियों के दोनों मार्गों का वर्णन करते हुवे मालिक मुहम्मद जायसी के बारे में कहते है कि अवधी भाषा उनको प्रिय है। उसी भाषा में 'पदमावत' जैसे महाकाव्य की रचना करते हैं। जिसमें नवों रसों और अलंकार की अद्भूत प्रयोग दिखता है। हिन्दू धर्मानुसार बारहमासे का वर्णन निराली है। वे 'अखरावट' द्वारा संसार के लेखन परम्परा को प्रभावित करते हैं। कृपाराम

(कविता काल संवत् 1595) के गुणों का बखान करते हुए उनके रीति पद्धति का विस्तार करने वाले बताते हैं। उनका ग्रंथ 'हित-तरंगिनी' को रूचिकर बताया है। वे नायिका भेद, भाव-रस-रूप- निरूपण करने वाले महान कवि हैं। स्वामी हरिदास जो कृष्ण भक्त कवि थे उनको 'रसिक राज' की उपाधि प्रदान करते हैं। वे कृष्ण के प्रेम में इतने लीन हुवे कि वृन्दावन जाकर बस गये। आज भी वृन्दावन में उनके रहने के स्थान को 'निधिवन' नाम से जाना जाता है। जिनके शिष्य तानसेन और लोग थे। अकबर के लाख कोशिश के बाद भी वह उससे कभी नहीं मिलते क्योंकि कहते हैं कि संसार का सारा रस कृष्णभक्ति में है किसी राजा-महाराजा के पास नहीं। हरि जी अनेकों कृष्ण भक्त कवियों के जीवन के विषय में, उनके समय, उसकी रचना एवं उनके महत्व के बारे में अपने सूत्रात्मक वाक्यों द्वारा कवि- कीर्तन में परिचित कराते हैं। हरीराम व्यास और श्री भट्ट के बारे में लिखते हैं कि- ''भक्त-सिरोमनि व्यास ओरछा नगर निवासी/ श्री हरिवंस आसंस-सिष्य हित-धाम-विलासी। निम्बारक- मत पुष्टकरन जय श्रीभट बंका,/ बिरचि 'जुगल-सत' प्रेम पंथ धरयो दै डंका;/ अष्टजाम निहकाम भावना-भजन-उपासी,/ अनुभव-सिद्ध प्रसिद्ध पद्य जाके रस-रासी।।''[11]

रामभक्ति कवियों में वे गोस्वामी तुलसीदास जी के परम भक्त थे। तुलसीदास के जीवन काल से लेकर उनके माता, जन्म स्थान काव्य कृतियों का सुन्दर सूत्रात्मक वर्णन करते हैं। नाभादास द्वारा तुलसीदास के लिए लिखी गयी 'कुलि-कुटिल जीव-निस्तार हित, बाल्मीक तुलसी भयो' वाली बात से सहमत ही नहीं है बल्कि उसे दुहराते हैं। तुलसी को बाल्मीक के अवतार रूप में देखते हैं। कहते हैं कि वे जीवों के उद्धार के लिए पुनः आये हैं- ''तुलसी हुलसी-सुवन जीवन-उद्धारन आयो,/ वाल्मीक अवतार जगत निस्तारन आयो।''

ठीक उसी तरह से जैसे गंगा स्वर्गलोक छोड़कर धरती पर आयी हैं। गोस्वामी जी के मानस को इस धरती का पुण्य का पताका कहते हैं। हरि जी के सूत्रात्मक शैली का यह अनूठा नमूना है जो चार छः पंक्तियों में पूरा काव्य रच जाते हैं। जो पूरे भावों को पाठक के मन तक पहुँचाने में सफल है। हरि जी गोस्वामी तुलसीदास से अधिक प्रभावित हैं। उनके रचनाओं का बखान करते नहीं थकते उनके द्वारा रचित रामायण को 'भूतल का स्वर्ग' मानते हैं। विनय-पत्रिका को भगवान से प्रेम की पराकाष्ठा के रूप में देखते हैं। वे निर्गुण-सगुण, ज्ञानी-अज्ञानी सबके लिए एक समान सुख देने वाली रचनाओं के जनक हैं। यही नहीं हरि जी भारत भूमि को भी धन्य मानते हैं, जहाँ तुलसीदास ने जन्म लिया है। वे कहते हैं- ''तुलसीकृत रामायन भूतल सरग-निसैनी,/ 'विनयपत्रिका' बिरचि विमल हरि ओम प्रचारयो,/ धनि श्री तुलसीदास! धन्य तुव अमरत-बानी। भरतभूमि धनि! जहाँ प्रगटि थे तो सम ग्यानी।।''[12]

कवि केशवदास जी के गुणों का बखान करते हैं। उनको 'कवि-नृप' की उपाधि प्रदान करते हैं। भाषा के संरक्षक के रूप में देखते हैं, कहते हैं कि केशव काव्याचार्य हैं जो ओरछा नरेश इन्द्रजीत के दरबार में रहते हैं और 'कविप्रिया' लिख काव्य के गुण-दोष बताते हैं। 'रामचन्द्रिका' की सूत्रात्मक आलोचना भी करते हैं। उसे स्वार्थ-सिद्धि का माध्यम बताते हैं। अलंकार की अनोखी पकड़ को केशव की विशेषता बताते हैं। उसकी शैली को रमणीय और भाषा को सुसंस्कृत बुंदेली एवं ब्रज का मेल बताते हैं। जो सरस और मधुर है- ''कविप्रिया' लिखि काव्य-दोष-गुन-गति निरधारी। 'रासिक प्रिया' रसरासि रसीली लता नवेली,/ अलंकार-ध्वनि-लक्ष्य-व्यंग्य-रसजुत अलवेली।। उत्पेच्छा उपमान अनोखी सूझ सुझावै,/ सैली अति रमनीय भाव कमनीय लखावै।।''[13]

कवि-कीर्तन में अनोखी सूत्रात्मक आलोचनात्मक शैली का प्रयोग वियोगी जी ने किया है। परन्तु अकबर का वर्णन इन कवियों के बीच में कहीं न कहीं एक टीस छोड़ जाता है। सायद साहित्य और साहित्यकारों के संरक्षक के रूप में उसका बखान हरि जी ने किया है। उसकी तुलना भोज एवं मनु से कर बैठते हैं, यहाँ तक कि उसे कल्पतरू की उपमा दे देते हैं। जो कही से उचित नहीं जान पड़ता। भोज राजा खुद एक अच्छे विद्वान कवि थे, उनसे अकबर की तुलना मन को खटकती है। जबकि वही मुसलमान धर्म से होने के बाद रसखानि के काव्य में को मोह लेता है। रसखान कृष्ण भक्त थे और ब्रज में सवैया की रचना की है। उन्होंने रसखान को मुसलमान कुल का दीप कहा जो हिन्दुओं के माथे का टीका (श्रृंगार) है। भगवान् कृष्ण के भक्ति में इतने लीन हो जाते है कि वृन्दावन को कभी नहीं छोड़ना चाहते। यहाँ तक कि अपने कृष्ण भक्ति के समक्ष मक्का-मदीना को ही छोड़ देते हैं। ब्रज की गलियों में घूम-घूम कर कृष्ण और राधा के सुन्दर छटा को देखते हैं और सहर्ष रूप से

सवैया की रचना करते हैं। हरि जी कहते है- ''मुसलमान-कुल दीप, कोटि हिन्दुन-सिर-टीको,/ वृन्दावन-रज छाँड़ि जाहि जग-सरबस फीको;/ दीनों मक्का वारि सहज जाने गिरिधर पै। धनि रसखानि! विमुग्ध त्रिभंगी नट नागर पै।।''[14]

वहीं दादू-दयाल जी के गुणों का गान चार पंक्तियों में करते हुये उनका। साहित्य योगदान बताते हैं- ''दादू परम दयाल राम-सुचि भक्ति-प्रचारक,/ अनुभव सिद्ध प्रसिद्ध जीव-अद्य-ओद्य उद्धारक;/ साखी सब्द सुनाय बिमुख हरि सनमुख कीनें,/ दादूपंथ चलाय मुक्ति-परवाने दीनें।।''[15]

वियोगी हरि जी ने अपने काव्य रचना कवि कीर्त्तन में रीतिकाल का पूरा दस्तावेज तैयार किया है। इससे इतिहास का बोध होता है। कवियों के कीर्त्तन के माध्यम से हरि जी तत्कालीन समाज की स्थिति समय एवं उस समय के प्रशासक पर पूरी तरह नजर डालते हैं। जिसका इतिहास का भी बोध पाठक को होता है। वे पाठक को साहित्य के इतिहास से जोड़ने का कार्य साथ-साथ करते हैं। कवि की रचना कर्म के साथ-साथ उस समय की परिस्थिति को भी सूत्रात्मक शैली में प्रस्तुत कर जाते हैं। रीतिकालीन प्रवृत्तियों की पूरी चर्चा अपने सूत्रात्मक आलोचना द्वारा कविता के माध्यम से कर जाते हैं, जो अद्भुत है। भूषण की प्रसंशा करते समय तत्कालीन राज्य पन्ना एवं उनके राजा महाराजा छत्रसाल की चर्चा कर देते हैं कि भूषण के सम्मान में छत्रसाल ने खुद उनकी पालकी में कंधा लगा दिया था। भूषण को 'भूषण' की उपाधि देने वाले चित्रकूट के राजा रूद्रराम सोलंकी जी थे। हरि जी लिखते हैं- ''जय भूषन कविराज, त्रिविक्रमपुर को वासी,/ कान्यकुब्ज-द्विजदीप ओज-तप-प्रभा-प्रकासी। वीर रूद्र रस छाँड़ि आन रस नाहिं बखान्यो,/ कै सिव कै सिवराज मानि नहिं आनहि मान्यों।। अलंकार 'सिवराज विभूषन' 'सिवा बावनी'/ 'छत्रसाल नृप दसक' सुरचना जीय-लुभावनी;/ छत्रसाल ने आप पालकी काँधो दीनों/ धनि भूषन कविराज! देस चिर-बाधित कीनों।।''[16]

इसी तरह रीतिकाल के अनेकानेक कवियों की सूत्रात्मक आलोचना वियोगी हरि जी अपने कवि-कीर्त्तन में करते हैं। जो मात्र सुमिरन या कीर्त्तन मात्र नहीं है, बल्कि आलोचनात्मक भाव व्यक्त करते हैं। जिसमें बिहारी लाल, मतिराम, कुलपति मिश्र, सुखदेव मिश्र, निवाज, वृन्द, देव, आलम, बैताल, लाल, घनानन्द, श्रीपति, शीलदास, महाराज नगरीदास, चरणदास, भिखारीदास, सोमनाथ, तोषनिधि, रसलीन, रघुनाथ, अलबेली अलि, हित वृन्दावल दास, नूर मुहम्मद, सहजोबाई, सुंदरि कुँवरि, भगवत् रसिक आदि नाम आते हैं। जिनको उनके कविताकाल के साथ उनके रचना, शैली, गुणों के साथ प्रस्तुत किया है। वियोगी हरि जी रीतिकालीन सभी कवियों का पूरा दस्तावेज तैयार कर दिये है। उनकी समीक्षा, रचना से सभी वस्तुवत् जानकारी सूत्रात्मक शैली द्वारा प्रस्तुत करते हैं। वे घनानन्द का पूरा इतिहास ही कुछ पंक्तियों में प्रस्तुत कर देते है। सुजान की बात करते कहते है- ''घनानंद सुजान जान को रूप दिवानो,/ बाही के रँग रँग्यो'-फंदनि अरूझानों।''

हरि जी बिहारी लाल को भाषा के जादूगर के रूप में देखते हैं। इनकी रचना 'सतसई' श्रृंगार रस की अद्भुत खान है। जहाँ नीति और भक्त का भी भण्डार है। कोई भी ऐसा पाठक नहीं है जिसके मन को ये न भाता हो। इनके दोहे मन में काँटे की तरह चुभते हैं। अच्छे से अच्छा साहित्यकार इनकी रचना पर मुग्ध हो जाता है। इनकी भाषा पर ऐसी पकड़ है कि दोहों में ध्वनि, अलंकार, भाव, व्यंग्य और शब्द शक्तियों के द्वारा 'गागर में सागर' भरने का काम कर जाती है। उनके एक- एक दोहा तिलक के समान है जो एक से बढ़कर एक है। हरि जी कहते हैं- ''भाषा-कवि-नृप चक्रवर्ति जगमान्य बिहारी,/ मनु दूजो जयदेव रहस-पद्धति बिस्तारी। अलंकार ध्वनि, भाव, व्यंग्य अरू लक्ष्य बतायो,/ गागर सागर भरयो, सबै अद्भुत रस प्यासो।।''[17]

कविवर मतिराम का कविता काल संवत् 1720 बताते हुवे, उन्हें भूषण का अनुज बताते हैं। इनका व्यक्तित्व बहुत ही रसिक है, जो रीति-छंद के आचार्य हैं और भाषा इनकी माधुर्य गुण परिपूर्ण है। इनके द्वारा रची गयी रचनाओं में 'रसराज' 'छंदसार' 'साहित्य-सार' और 'ललित-ललाम' है। इसे पढ़कर पाठक को साहित्य के प्रति रूचि जागृति होती है। उनको इतना सम्मान प्राप्त हुआ किन्तु कभी अभिमान नहीं दिखाये। अपने कविता के विलच्छण प्रतिभा, ओज एवं माधुर्य गुण से सिर्फ कृष्ण और राधा के रूप, गुण सौन्दर्य का ही गुणगान किया है। ''कविवर भूषण-अनुज सुमति मतिराम रँगीलो,/ रीति-छंद-आचार्य ललित भाषा-गरबीलो;/ रचि 'रसराज' सु 'छंदसार' 'साहित्य-सार' सुचि,/ 'ललित ललाम' बनाय बढ़ाई साहित्यिक रूचि।।''[18]

वे भिखारीदास जी का वर्णन करते हुए उनकी रचनाओं 'काव्य-निर्णय' और 'रस-सारांस' की चर्चा करते हैं। जिसमें छोटे-छोटे काव्य के भेद गिनाये गये हैं। रसलीन के विषय में बताते हुए उनका मूल नाम बताते हैं और उनकी रचनाओं के विषय में बताते हैं। ''सैयद नबी गुलाम नाम रसलीन धरयो है,/ 'अंग दरपन' 'रसबोध' आदि में रंग भरयो है।''[19]

रीतिकालीन स्त्री कवियित्रियों में सहजो बाई, संदरि कुँवरि आदि लोगों के विषय में बताते हैं जो अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है। उसके बारे में उनका परिचय एवं उनकी रचना की विशेषता बताते हैं। साथ-साथ उनका सामाजिक महत्व भी समझा जाते हैं। वे सूत्रवाक्य में कहते हैं कि- ''चरनदास की सिष्य एकरस सहजो बाई,/ गुरु गोविन्द में सदा सहज समता दरसाई;/ नृपति नागरीदास-भगिनि कवि कुँवरि मुंदरी,/ राधा-रमन पवित्र प्रेम की मनों सुंदरी। रचि अनेक सद्ग्रन्थ ग्रन्थि माया की तोरी,/ मन-मोहन सों प्रीति-रीति मीरा लौं जोरी।।''[20]

बेनी प्रवीन जी के बारे में बताते हैं कि वह लखनऊ की निवासी है और उनकी रचना का नाम 'नवरस-तरंग' है। जिनकी रचनाओं में रस के अंगों का निर्धारण किया गया है। इनके रस अनेक काव्य का श्रृंगार है। इनकी रचना काव्य में रस को महत्व दिया गया है। हरि जी सूत्रात्मक आलोचना द्वारा कहते हैं कि- ''सुकवि बेनि परवीन लखनऊ-नगर निवासी'/ कान्यकुब्ज द्विजदीप जासु रचना रसरासी। 'नवरस-तरँग' बनाय भेद रस के निरधारे,/ लै-सिंगार को सार काव्य के अंग सँवारे।।''[21]

हरि जी रीतिकालीन बहुत सारी कवयित्रियों का परिचय एवं उनकी रचनाओं पर प्रकाश डालते हैं, जो अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है। वे ताज का कविता काल संवत् 1700 बताते हैं। जिनकी जाति मुसलमान थी, परन्तु श्रीकृष्ण की परम उपासक थी। कृष्ण-प्रेम में ऐसी डूबी की परम को प्राप्त कर लिया। उनके लिए कविता एवं पदों की रचना कर सबका प्रेम कृष्ण के प्रति जागृत किया। हरि जी अपने सूत्र काव्यों में उनका बखान करते हैं कि- ''ताज भक्त-सिरजात रही कोई मुगलानी,/ हैय हिंदुवानी नंदलाल के हाथ बिकानी;/ छैल छबीले रसिक स्याम संग नेह बढ़ायो;/ रचि कवित्त पद कृष्ण-प्रेम को अमल चढ़ायो।।''[22]

इनके साथ ही जामसुता जोड़ेचीजी प्रताप बाला के गुणों का बखान करते है जिनका कविता काल संवत् 1944 है। वे कृष्ण भक्त थी और मीरा को अनुशरण करती थी। इनके पद भक्ति-भाव मय हैं। ''जामसुता परताप कुँवरि नृप जाम-दुलारी; / भजि गिरिधर गोपाल बानि मीरा की धारी। रचे भजन पद भक्ति भाव मय हरि-रस-भीने,/ जहँ देखौ तहँ जड़े जगमगे स्याम नगीने।।''[23]

आधुनिक काल के बहुत सारे कवियों का वर्णन कवि-कीर्त्तन में हरि जी करते हैं। आधुनिक काल में उनका योगदान एवं साहित्य को अग्रसर करने में किये गये उनके प्रयास की चर्चा वे करते हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी के भाषा प्रेम का वर्णन करते हैं। उनको नाटकों का उद्धारक कहते हैं एवं स्वतंत्र रूप से प्रचारक मानते हैं। जो हिन्दी भाषा का प्रचार एवं विस्तार करते हैं। उनकी 'प्रेम-फुलवारी' 'चंद्रावली', 'प्रेम-माधुरी' एवं 'भक्तमाला' जैसी रचनाओं का वर्णन करते नहीं अघाते हैं। हरि जी उनको प्रातः पूजे जाने वाले कवि के रूप में देखते हुए लिखते हैं- ''जय प्रातः स्मरणीय पूज्यवर हरिश्चन्द्र कवि,/ भारतेन्दु रस-सिन्धु, किधौ कवि-कंज-पुंज-रवि;/ भाषा भरन अमोल, दीन-अँखियन को तारो,/ जय नाटक-आचार्य, आर्य सद्धर्म उद्धारक,/ सुभ जातीय-विचार चारू स्वातंत्र्य-प्रचारक;/ जन 'तदीय सर्वस्व' प्रेम को मारग गहिये,/ 'नमो हरिश्चन्द्राय' भक्ति सों प्रतिदिन कहिये।।''[24]

हरि जी आधुनिक काल की कुछ ऐसी कवयित्रियों को सामने लाते हैं। उनके रचनाकर्म को पाठक के सामने परोसते हैं जो कहीं नहीं मिलता। ओरछा नरेश प्रताप सिंह जी की पत्नी वृषभान कुँवरि (कविता काल संवत् 1939) के त्याग और साहित्य-प्रेम को बताते हुवे कहते हैं कि- ''उर्द्धाधीस प्रताप सिंहजू की महरानी/ श्रीवृषभानु-कुमारि परम तपसिन हठसानी। कनक भवन बनवाय अवध में कीरति छाई,/ लीला ललित नवीन सीय बल्लभ की गाई।।''[25]

आधुनिक कवियों में वो अम्बिका दत्त व्यास को साहित्य आचार्य की उपाधि देते हैं। उनके लेखन की दोनों विधाओं की प्रशंसा करते हैं। कहते हैं- ''व्यास अम्बिकादत्त सुकवि साहित्याचारज,/ गद्य-पद्य निरवद्य-कुसल, वैष्णववर आरज। लिज्यो 'बिहारि-विहार' हार कविता प्रेमिन को,/ कैधों सुभग सिंगार विहारी-कवि-नेमिन को।।''[26]

भारतेन्दु युगीन कवियों में बदरीनारायण चौधरी (प्रेमधन) के बारे में बताते हैं कि वे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अनन्य हैं। साहित्य में निपूर्ण हैं। 'आनन्द-कादम्बिनी' पत्रिका के सम्पादक हैं। 'मंगलास', 'मनमौज', 'आनन्द बधाई', 'हार्दिक हर्षादर्स' नामक रचनाएँ लिखी हैं। कृष्ण को मानने वालों में हैं। अपने नाम प्रेमधन के अनुरूप उनका गुण भी है। उनके अन्दर प्रेम का रंग भरा है- ''जयति प्रेमधन नाम सुकवि बदरीनारायण,/ भारतेन्दु को मीत रसिक साहित्य-परायन;/ 'आनँद-कादम्बिनी' पत्रिका जाने थापी,/ रची मनों गंभीर मनोहर नव-रस-बापी।।''[27]

हरि जी सूत्रात्मक शैली में बहुत ही सरल शब्दों में प्रेमधन जी के कृतियों की विशेषता बता जाते हैं। उनके कर्मों को उनके नाम से जोड़ जाते हैं। वे आधुनिक काल के बहुत सारे लेखकों को पाठकों के समक्ष एक अनोखे रूप में लाते हैं। वे निबन्धकार, नाटककार एवं गद्य के अन्य विधाओं के लेखक के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त लोगों के एक नये रूप कवि के रूप में प्रस्तुत करते हैं। जो पाठकों के लिए रोचक है। क्योंकि पाठक उनके साहित्य कर्म के सिर्फ एक विद्या से परिचित था पर एक अन्य रूप प्रस्तुत कर हरि जी उनको सम्पूर्णता प्रदान करते हैं। इन लोगों में अम्बिकादत्त व्यास, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', प्रताप नारायण मिश्र, जगन्नाथ प्रसाद, श्रीधर पाठक, महावीर प्रसाद द्विवेदी, किशोरी लाल गोस्वामी, राधाकृष्ण दास, बालमुकुन्द गुप्त, लाला भगवानदीन, जगन्नाथदास रत्नाकर, राय देवी प्रसाद पूर्ण का नाम आता है। जिनकी प्रसंशा वो कवि रूप में करते हैं। प्रताप नारायण मिश्र को कवि प्रताप नारायण मिश्र के रूप में प्रस्तुत करते हुवे कहते हैं कि- ''कविवर मिश्र, प्रतापनारायन प्रेम-प्रमादी,/ भारतेन्दु- अनुगामिक, रँगीलो, नवरस-स्वादी;/ हिन्दी-हिन्दू-प्रान, विविध भाषा-गुन-ग्याता,/ पूरो प्रतिभावन, हास्य-प्रिय, सूझ विधाता।। ब्रजभाषा सनमानि, खड़ी बोली नहिं मानी,/ परखी कविता-रीति, प्रीति की गति पहचानी।।''[28]

वहीं राधाकृष्णदास को भारतेन्दु के करीबी और काशी के श्री के रूप में देखते हैं। कहते हैं कि- ''भारतेन्दु-वर-बन्धु, निवासी श्रीकासी को,/ राधाकृष्ण सुदास, दास आँनदरासी को;/ ग्रन्थ अनेक बनाम काव्य-उपवन सरसायो,/ रसिक पथिक विरमाय बिलच्छन रस बरसायो।।''[29]

इसी तरह बालमुकुन्द गुप्त का कविता काल बताते हुये उनके देशभक्ति, हिन्दी के हितैसी, ब्रजभाषा का ज्ञानी बताते हैं। उनका परिचय कवि, लेखक, निडर आलोचक के साथ एक हास्यप्रिय व्यक्ति के रूप में कराते हैं। जबकि बालमुकुन्द गुप्त जी को ज्यादातर पाठक एक निबन्धकार के रूप में देखते हैं। 'भारत-मिश्र' पत्रिका के संपादक के रूप में जिनकी लेखनी में अद्भुत शक्ति है। वे सच्चे कीर्त्तनिये के रूप में उनको महिमा मंडित करते हुए कहते हैं- ''जय-जय बालमुकुंद गुप्त हिन्दी हितकारी/ देशभक्त, हरिभक्त-भक्त भाषा-व्रत धारी,/ 'भारत मित्र' चलाय देश भर को हित कीनों/ भाषा के बल-प्रबल लेखनी ते भरि दीनों।।''[30]

हरि जी स्वर्गीय श्रीमती महारानी छत्रपुराधीश्वरी कमल कुमारी देवी (जुगल प्रिय) के बारे में बताते हैं। जिनके विषय में कम लोगों को ज्ञात होगा। वह ओरछाधीश महाराज प्रतापसिंह जूदेव की स्वर्गीय महारानी थीं। जो कृष्ण की भक्ति में लीन होकर उसके लिए पद लिखती हैं। कठोर तप और कृष्ण के प्रति जुगल प्रेम की प्राप्ति के लिए महलों एवं राज-पाठ से मुक्त हो जाती हैं। उनकी महिमा का वर्णन किस तरह वियोगी जी करते हैं। देखने योग्य है- ''श्री वृषभानु कुमारि-दुलारी कमल-कुमारी-/ जुगलप्रिय उपनाम प्रेममूरति बलिहारी। धरी राजसी दूरि कृष्ण-रस-रंग-समानी,/ करि कठोर तप जुगल रूप के हाथ बिकानी।।''[31]

हिन्दी साहित्य में इतिहासकार एवं आलोचक के रूप में जाने जाने वाले लोगों को वियोगी हरि जी ने एक अलग रूप में पाठकों के सामने अपने रचना कवि-कीर्त्तन में प्रस्तुत किया है। जिनमें प्रमुख रूप से राम विहारी मिश्र, शिवसिंह सैंगर और रामचन्द्र शुक्ल का नाम आता है। जिनकी कवि गुण का बखान करते हुये कहते हैं कि- ''कवि सिवसिंह 'सरोज' कार साहित्य-सुनेमी,/ या सों उरिन न कबहुँ होयँगे कविता प्रेमी;/ करिकै गहरी खोज कविन को संग्रह कीनो/ साहित्यिक इतिहास बिरचि कै चिर जस लीनों।।''

''राम चन्द्र द्विज शुक्ल सुकवि श्रीकासी-वासी,/ सहृदय, सुधी, सुजान, सतत साहित्य-विलासी।। 'बुद्ध चरित' 'कल काव्य बिरचि' कविता सरसाई;/ या नीरस जुग माहिं सरस ब्रजभाषा गाई।।''[32]

इसी क्रम में इतिहासकार के रूप में ख्याति प्राप्त मिश्र बन्धुओं का नाम गिनाते हैं। जिनको अधिकांश पाठक इतिहासकार ही जानते हैं। श्याम बिहारी मिश्र और उनके भाई शुकदेव बिहारी मिश्र जी काव्य रचना में भी पारंगत थे। वे अपनी मातृ-भाषा के उत्थान में बहुत सहयोग दिया। ये सभी भाई इतना मिल-जुल कर रचना करते थे कि इन्हें अलग-अलग नामों से कम जानकर 'मिश्रबन्धु' नाम से जाना जाता है। हरि जी अपने कीर्त्तन में इनको संबोधित करते हुवे कहते हैं कि- ''स्याम बिहारी मिश्र, अनुज सुकदेव बिहारी,/ कविता-कला-प्रवीन, मातृभाषा-हितकारी;/ उभय बंधुवर नीर-छीर लौं मिले रहत हैं,/ भेद-भाव तजि 'मिश्रबन्धु' सब इन्हें कहत हैं।।''[33]

वे कविवर राम नरेश त्रिपाठी जी को देश के अद्भुत कवि के रूप में देखते हैं और राष्ट्रभाव एवं राष्ट्रहित के लिए जनता में क्रान्ति के बीज बोने वाले कवि मानते हैं। ये अपनी रचनाओं में देश के शुभ और शान्ति के मार्ग प्रशस्त करते जाते हैं। इनकी रचना 'कविता-कौमुदी' की प्रसंशा चारों ओर फैली जैसे कविता के सागर में इन्हीं के नाम की लहर दौड़ रही है। इनकी कविता की शैली ओज और माधुर्य भाव पूर्ण है जो पाठक को सहज प्राकृत की अनूभुति कराती है। इनकी रचना 'पथिक' पूरे देश के लिए पथ-प्रदर्शित करती है- ''कविवर रामनरेश, देस को रतन कांतिमय,/ राष्ट्रभाव अनुभाव जासु सुभ क्रान्ति-सान्तिमय;/ निहचै याको 'पथिक' श्रेय को पंथ धरैगो,/ अच्युत पद को पाइ देस की व्यथा हरैगो।।''[34]

इसी क्रम में हरि जी माखन लाल चतुवर्देदी जी की कविताओं को रखते है और उनके साहित्यिक उपनाम 'भारतीय आत्मा' से सम्बोधित करते हैं। चतुर्वेदी जी को वे भारत माता का लाल कह क्रान्तिकारी रूप में प्रस्तुत करते हैं। जिनका तेज और गंभीरता एक नयी सुबह लाती है। इनकी कविताएँ वीरों में नव शक्ति का संचार करती है। उन्हें जगाती हैं, नया जीवन प्रदान करती है जो शक्ति राष्ट्रहित में जान डाल देती है। वियोगी हरि जी अपनी अद्भुत सूत्रात्मक शैली द्वारा चार पंक्तियों में ही माखन लाल चतुर्वेदी जी के पूरे साहित्य का सार कह जाते हैं जो पाठक के लिए किसी कुंजी से कम नहीं है। वे लिखते हैं कि- ''कविवर माखनलाल लाल भारत माता को,/ तेजस्वी, तपपुंज, रूप गंभीर, आभा को। याकी कविता बीर-बाहु फरकावनिवारी,/ नव जीवन, नव सक्ति राष्ट्र में फूँननिहारी।।''[35]

वियोगी हरि जी ने अपनी शैली सूत्रात्मक आलोचना द्वारा पूरे हिन्दी साहित्य के कवियों का परिचय एवं उनके कृति की एक झलक प्रस्तुत करने का सार्थक प्रयास किया है। उनकी कृति कवि-कीर्तन नामानुसार तो कवियों के नाम स्मरण का माध्यम है। लेकिन ध्यान देने योग्य है कि इसमें उनके कविता काल, कृति एवं कृति की शैलीगत विशेषता को सूत्रात्मक आलोचना से प्रस्तुत किया गया है। जो हिन्दी साहित्य में दुर्लभ है।

वियोगी हरि की इस कृति की प्रशंसा उस समय में भी हुई थी। प्रभा में लिखा गया है कि ''वियोगी हरि जी ने एक अजीब तबीयत पाई है। प्रस्तुत पुस्तक क्या है, हरि जी के दिल की एक धड़कन है। ब्रजभाषा के कवियों को आप ने इसमें एक अनूठे ढंग से पेश किया है। प्राचीन एवं अर्वाचीन कवियों की उक्तियों पर हरि जी की चुभती हुई आलोचना चित्त को लुभा लेती है। पुस्तक हिन्दी साहित्य में एक अनोखी वस्तु है।''

कवि-कीर्त्तन में वे भारत के कवियों की विषयगत विविधता एवं रस प्रवणता की दृष्टि से चर्चाकर मुग्ध होते हैं। कवि-कीर्त्तन सरस सूक्तिपरक काव्यात्मक आलोचना की महत्वपूर्ण धारा है, इतिहास बोध की गहराई एवं समीक्षा की सूत्रात्मक तरलता इसे विस्मृत नहीं होने देगी साहित्येतिहास के प्रणेता इस कृति से सहायता पाते रहेंगे।

संदर्भ-सूची

[1]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 4
[2]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 6
[3]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 7
[4]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 7.
[5]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 7-8.
[6]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 8.
[7]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 8-9.
[8]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 9-10.
[9]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 10-11.
[10]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 11.
[11]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 14-15.
[12]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 16-17.
[13]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 18.

[14]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 21.
[15]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 22.
[16]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 27-28.
[17]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 25-26.
[18]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 26.
[19]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 39.
[20]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 43.
[21]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 48.
[22]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 25.
[23]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 73.
[24]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 64-65.
[25]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 67.
[26]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 68.
[27]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 68.
[28]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 70-71.
[29]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 75.
[30]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 76.
[31]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 80.
[32]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 68 व 84.
[33]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 81.
[34]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 85.
[35]वियोगी हरि -कवि-कीर्त्तन, पृ0सं0 86.

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,27-29
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 29 सितम्बर 2015

कबीर का दर्शन : एक विवेचन

डॉ. सुजीत कुमार सिंह*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *कबीर का दर्शन : एक विवेचन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *सुजीत कुमार सिंह* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सामान्यतः यह कहा जाता है कि भारत का प्रत्येक मनुष्य (शिक्षित या अनपढ़) दार्शनिक है। उसे पता है ईश्वर के बारे में, अपने बारे में, संसार के बारे में और इनके बीच परस्पर सम्बन्धों के बारे में। कबीर (1397-1518 ई0) सामान्य मनुष्य नहीं थे; वे संत थे। उनमें अनुभूतिप्रवणता उच्चतम् हद तक थी। इसीलिए उन्होंने 'सत' के स्वरूप को; जो प्रकारान्तर से भारतीय संस्कार में अलग-अलग परिस्थितियों को स्वीकारती हुई व्यक्त होती रही है, को अभिव्यक्त किया।

कबीर की दार्शनिक पृष्ठभूमि के विषय में विद्वानों में मत वैभिन्न्य है। कोई कबीर को ईश्वरवादी मानता है और कोई सर्वेश्वरवादी। बाबू श्यामसुन्दर दास कबीर को 'ब्रह्मवादी' या अद्वैतवादी मानते हैं।[1] डॉ0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने पूरी संत परंपरा में 'अद्वैत', 'भेदाभेद', और 'विशिष्टाद्वैत' की स्थिति लक्षित करते हुए कबीर को अद्वैत विचारधारा मानने वाले संतों में प्रमुख स्थान दिया है।[2] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने एक नवीन स्थापना करते हुए कबीर के 'निर्गुण राम' को नाथपंथी योगियों के 'द्वैताद्वैतविलक्षमसमतत्त्व' के ह्रप में देखा है।[3] 'कबीर वचनावली' में परशुराम चतुर्वेदी ने स्वयं कबीर की पंक्तियों को उद्धृत करके यह प्रमाणित करना चाहा है कि कबीर के मत में जो तत्व प्रकाशित हुआ था, वह उनके स्वाधीन चिंतन का ही परिणाम था।[4] इस सम्पूर्ण विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि- कबीरदास एकेश्वरवादी थे, ब्रह्मवादी थे, नाथयोग से प्रभावित और द्वैताद्वैतविलक्षण समतत्ववादी थे, स्वतंत्र विचारक थे तथा सम्पूर्ण भारतीय दर्शन के व्यावहारिक अभिव्यक्ति थे।

यह सही है कि कबीर ने साखी, सबद, रमैनियों में उन्हीं चार तत्वों यथा-ब्रह्म, आत्मा, माया, तथा जगत को अभिव्यक्त किया है जो सामान्य अनपढ़ भारतीय को ठेठ रूप में पता है, लेकिन कबीर ने इन तत्वों पर संत, भक्त और अनुभूतिप्रवण साधक की शर्त पर अपनी बात कही है, इसलिए उनकी दार्शनिक विचारधारा का अध्ययन भी इन्हीं चार शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं-

* [पोस्ट डॉक्टोरल फेलोशिप] हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

कबीर के ब्रह्म (निर्गुण राम) निर्गुण निराकार, अजन्मा, अविनाशी, अव्यक्त और अलक्ष है। चारों वेद, स्मृतियां, पुराण, व्याकरण आदि कोई भी उसका मर्म नहीं जानता- ''निरगुण राम निरगुण राम जपहुं रे भाई। अविगति की गति लखी न जाई।। चारि वेद जाके सुमृत पुराना,/ नाव निरंजन जाको रे।''

पुराण प्रतिपादित अवतारवाद में उनका कोई विश्वास नहीं है वे स्पष्ट कहते हैं- ''जन्मै मरय न संकटि आवै नाव निरंजन जाकौ। दास कबीर को ठाकुर ऐसो, जाको मायी न बापौ रे।।''

व्यावहारिक दृष्टि से उन्होंने अपने ब्रह्म के लिए सम्प्रदायगत अनेक नामों को अपनाया है। हिन्दुओं द्वारा मान्य अनेक नामों द्वारा वे अपने परमब्रह्म की ओर संकेत करते हैं, जैसे- विष्णु, हरि, गोविंद, राम आदि। इसी प्रकार मुस्लिम स्रोतों से भी कबीर ने अपने ब्रह्म के लिए अनेक नाम ग्रहण किये जैसे अल्लाह, रहीम, रब आदि। ऐसे ही कबीर ने बौद्ध-सिद्धों और नाथ-योगियों द्वारा गृहीत सहज, शून्य, उन्मन, अनाहत आदि से भी अपने ब्रह्म की अभिन्नता बतायी है। लेकिन यहाँ यह ध्यातव्य है कि ये सभी नाम परम्परा से भिन्न अपना अर्थ रखते हैं। लेकिन इतना तय है कि कबीर ने भारत की आत्मवादी और अनात्मवादी दोनों दार्शनिक पद्धतियों से ब्रह्म के नाम ग्रहण किये हैं, यही कारण है कि कबीर के ब्रह्म चिंतन पर तरह-तरह के आरोप लगाये जाते हैं। बहुत से विद्वान यह कहते हैं कि कबीर बौद्धों में वैष्णव और वैष्णवों में बौद्ध हैं।

इस प्रकार कबीर ने विरोधी विशेषणों द्वारा एक निर्विशेष और अव्यक्त रहस्यमय तत्व का चित्र प्रस्तुत किया। यही कारण है कि उनका यह विरोधाभास उनके ब्रह्म चिंतन के संदर्भ में अनेक भ्रांतियों को जन्म देता है। कबीर का परमब्रह्म निर्गुण, निराकार है किन्तु जब कबीर उसकी सगुणता का प्रतिपादन करने लगते हैं तो जैसे लगता है कि वह एक सगुण उपासक हैं। यथा- वे कहते हैं कि उनका ब्रह्म इतना रूपवान है कि संसार की सभी सुंदर वस्तुएं उसी से सुंदरता प्राप्त करती हैं। वह इतना सामर्थ्यवान है कि मनुष्यों की ही नहीं अपितु पशु-पक्षियों, जीव-जन्तुओं आदि सभी प्राणियों की वह रक्षा करता है। कभी कबीर उसे अपनी जननी बताते हैं और अपने को उसका बालक- 'हरि जननी मैं बालक तोरा।'

कभी उसे अपना पिऊ बताकर अपने को उसकी बहुरिया कहते हैं जो उनसे तनिक लहुरी है- ''हरि मोर पिऊ मैं हरि की बहुरिया। राम बड़ौ मैं तनिक लहुरिया।।''

कभी कबीर उसे अपना स्वामी बताकर स्वयं को उसका कुत्ता बताते हैं- 'कबीर कूता राम का मोतियां मेरा नाउ।'

इस प्रकार कबीर की उक्तियों में जो सगुण भावना दृष्टिगोचर होती है वह उपनिषदों की विचारधारा के अधिक निकट है। अनंत सौंदर्य, अनंत बल, अनंत ज्ञान आदि गुणों के होने के कारण परमब्रह्म सगुण लगता है लेकिन कबीर इसका सायास खण्डन करने में नहीं चूकते- 'दसरथ सुत तिहुँ लोक बखाना, राम नाम का मरम है आना।।'

जहाँ तक आत्मा अथवा जीव की परिकल्पना का प्रश्न है, कबीर की विचारधारा में जीव, ब्रह्म से पृथक नहीं है। तत्त्वतः आत्मा-परमात्मा एक ही है, सब जीव उसी में हैं, सब जीवों में वही है। समुद्र में बूंद की जो स्थिति है वही परमात्मा में आत्मा की है अर्थात् समुद्र में बूंद जैसे समुद्र से अलग नहीं है, वैसे ही परमात्मा या ब्रह्म में स्थित आत्मा या जीव उससे पृथक नहीं- 'हेरत हेरत हे सखी रहा कबीर हेराय। बूंद समानी समुद्र में, सो कत हेरी जाय।।'

माया के विषय में कबीर आदि संतों के विचार स्पष्ट थे कि यह संसार सत्य नहीं है, यह एक भ्रम है, जो माया के कारण ही है, जैसे अंधकार में रस्सी को देखकर सांप का भ्रम होता है वैसे ही अज्ञान के कारण संसार में सत्य का अभाव पाया जाता है। इसी अज्ञान को माया कहा गया है। जिससे सावधान रहने की बात सभी संतों ने कही है। कबीर कहते हैं माया अनेक रूप धारण कर मनुष्यों को ही नहीं देवताओं को भी ठग लेती है। तीनों लोकों में इससे कोई बच नहीं सकता- 'रमैया की दुलहिन लूटा बाजार,/ सुरपुर लूटा, नागपुरलूटा तीनों लोक मचा हाहाकार।'

कबीर ने माया को अनेक अपशब्दों से पुकारा है यथा- डाईन, कामिनी, सर्पनी, कुलटा, कलंकिनी आदि। माया त्रिगुणात्मक (सत रज, तम) है और अपने मोहपाश से सब को ठग लेती है- ''माया महाठगिनी हम जानी,/ त्रिगुन फांस लिये कर डोले बोले मधुरी बानी।।''

वस्तुतः कबीर के माया सम्बंधी विचारों पर सूफी प्रभाव के कारण उसका मानवीकरण हुआ है, इसीलिए कबीर ने अपनी उक्तियों में माया के कामिनी रूप की विशेष चर्चा की है, जैसे- ''नारी की झाई परत अंधा होत भुजंग। कबीर तिनकी क्या गति जो नित नारी के संग।।''

जहाँ तक जगत् दर्शन का प्रश्न है इस संसार की उत्पत्ति और उत्पत्ति के कारण को समझने के लिए दार्शनिक जगत में प्रमुख रूप से तीन मत प्रचलित हैं- आरंभवाद, परिणामवाद, तथा विवर्तवाद।

न्याय, तथा वैशेषिक दर्शन आरंभवाद के समर्थक हैं। ये कार्य की उत्पत्ति को सत्य मानते हैं। उत्पत्ति के पूर्व कार्य का अस्तित्व नहीं था, उत्पत्ति के पश्चात ही वह सत्य होता है। चूंकि कार्य की सत्ता उत्पत्ति के बाद आरंभ होती है अतः इसे आरंभवाद कहते हैं। इस मत के अनुसार कार्य, कारण से पूर्णतया भिन्न वस्तु है। जैसे मिट्टी से घड़ा बनता है लेकिन घड़े का अस्तित्व मिट्टी से पूर्णतया भिन्न है।

परिणामवाद, सांख्य, योग दार्शनिकों का है। उनके अनुसार कार्य, कारण का ही रूपान्तर या परिणाम है। वह कारण से बिल्कुल भिन्न नयी वस्तु नहीं है। जैसे घड़ा बनने के पूर्व वह मिट्टी के रूप में विद्यमान था अतः घड़ा मिट्टी का ही रूपान्तरण है। इस मत के अनुसार कारण और कार्य दोनों सत्य होते हैं।

इसी प्रकार विवर्तवाद अद्वैतवेदान्तियों का है। उनके अनुसार आरंभवादियों के मतानुसार न तो कार्य नये रूप में अस्तित्व में आता है, न हीं परिणामवादियों के अनुसार कार्य, कारण का विवर्त है। वस्तुतः कार्य असत् है, कारण ही सत् है, जैसे घड़ा न तो बनने के पूर्व सत्य है और न बनने के पश्चात। वस्तुतः कारण रूप मिट्टी ही सत् है। इसी प्रकार इस जगत का कारण ब्रह्म ही सत् है, जगत मिथ्या है- ''ब्रह्म सत्यम् जगत मिथ्या।''[5]

कबीर की उक्तियों में इसी विवर्तवाद को पूर्ण समर्थन मिला है। कबीर के अनुसार यह संसार रूपी बाजी झूठ है इसका बाजीगर ही सच्चा है- ''बाजी झूठा, बाजीगर सांचा कहै कबीर विचारी।''

कबीर की दृष्टि में यह संसार स्वप्नवत् है, मिथ्या है- ''यह संसार कागज की पुड़िया, बूंद पड़े गल जाना है।''

इस प्रकार दार्शनिक बिन्दुओं पर कबीर के विचार अद्वैतवेदान्त से मिलते-जुलते प्रतीत होते हैं किंतु एक स्वतंत्र चिंतक की भांति उन्होंने अन्य दार्शनिक पद्धतियों विशेषतः बौद्ध दर्शन से उपयोगी तत्त्व ग्रहण किये। माया सम्बंधी उनके विचारों पर कुछ विद्वान सूफी प्रभाव मानते हैं। इसके बावजूद हमें कबीर को एक स्वतंत्र विचारक ही मानना पड़ेगा, उन्हें दार्शनिक समझने की भूल नहीं करनी चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

[1]श्यामसुन्दर दास-*कबीर ग्रन्थावली*
[2]डॉ0 पीताम्बरदत्त वर्णवाल-*हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय*
[3]आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी-*कबीर*
[4]परशुराम चतुर्वेदी-*'कबीर वचनावली'*
[5]*शंकराचार्य*

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,34-43
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 20 अगस्त 2015

निराला की साहित्यिक अवधारणा : काव्य एवं गद्य

डॉ. सच्चिदानंद द्विवेदी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *निराला की साहित्यिक अवधारणा : काव्य एवं गद्य* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *सच्चिदानंद द्विवेदी* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

निराला एक ऐसे लेखक हैं जिनके जीवन और कृतित्व का संबंध अटूट है। इनके जीवन का एक-एक अनुभूत क्षण इनकी कृतियों में झलकता है, इनकी काव्य रचनाओं का विवेचन इनके गद्य साहित्य के संदर्भ में करना इसलिए आवश्यक जान पड़ता है कि दोनों के मूल में इनके एक ही व्यक्तित्व की प्रेरणा है। अभी तक इस आधार पर इनके कृतित्व को नहीं आंका गया है। निराला का व्यक्तित्व और कृतित्व संगतियों एवं असंगतियों का पुंज है, इनके व्यक्तित्व में परस्पर विरोधी तत्व पाये जाते हैं और इनके काव्य-संगीत में विषम स्वर झंकृत होते हैं। निराला एक साथ आत्मनिष्ठ एवं वस्तुनिष्ठ हैं, कवि एवं योगी हैं। सरल एवं जटिल हैं कोमल एवं कठोर है, उग्र एवं विनम्र हैं, अहंवादी एवं अहंविरोधी हैं, रहस्यवादी एवं यथार्थवादी हैं, छायावादी एवं प्रगतिवादी हैं, परम्परावादी एवं स्वच्छन्दतावदी हैं। इस प्रकार इनका व्यक्तित्व और काव्य विपरीत धाराओं का संगम है। इस संबंध में बच्चन सिंह का यह कथन ''निराला का कवि अपने समय में जितना विवादास्पद रहा है, कालान्तर में उतना ही अधिक निर्विवाद और सर्वग्राह्य सिद्ध हुआ है। कोई कलाकार जब रूढ़ि-जर्जर परंपराओं को छोड़कर नवीन शैली का विधान करता है तो साधारणतः पुरानी पीढ़ी उसका स्वागत नहीं करती, उल्टे नये निर्माता के प्रति अपरूप उद्गार प्रकट करती है, विवर व्याघ्र आलोचकों ने उन पर आक्रमण किए, प्रज्ञा चक्षु सम्पादकों ने उनकी रचनाएँ नहीं छापी। जिस मुक्त छन्द, उद्दाम आवेग और दार्शनिक ओजस्विता के साथ उन्होंने हिन्दी में प्रवेश किया, उन्हें समझने में देर हुई। उनके अन्तर्विरोधों संघर्षों और अनगढ़ व्यक्तित्व ने विवादास्पदता की आग में घी का काम किया। पर इतिहास को इस द्रष्टा कवि की देर से ही सही, पहचान करनी पड़ी।''[1] निराला जी तत्कालीन परिपाटी से अलग रचना धर्मिता को अपनाते हैं और सम-सामयिक काव्य अवधारणा के इतर अपने रचना सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। निराला के अपने कुछ मूल्य हैं जो समय के साथ परिस्थितियों के प्रभाव से परिवर्तित भी होते गये हैं, निराला जी का साहित्य के संबंध में ''प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन-फैजाबाद'' के अधिवेशन में टण्डन जी के भाषण का उत्तर इस प्रकार था, ''साहित्य दायरे से छूट कर ही साहित्य है, साहित्य वह है जो साथ है, वह

* [पोस्ट डॉक्टोरल फेलोशिप] हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

जो संसार की सबसे बड़ी चीज है, साहित्य लोक से-सीमा से-प्रान्त से- देश से-विश्व से ऊँचा उठा हुआ है। इसीलिए वह लोकोत्तरानन्द दे सकता है। लोकोत्तर का अर्थ है, 'लोक' से जो कुछ देख पड़ता है, उससे और दूर तक पहुँचा हुआ। ऐसा साहित्य मनुष्य मात्र का साहित्य है। जो भावों से केवल भाषा का एक देशगत आवरण उस पर रहता है।'' इस प्रकार निराला जी की अवधारणा यह है कि साहित्यकार राजनीतिज्ञ, धर्मशास्त्री या समाज सुधारक से बहुत उपर है।

निराला न तो जीवन में समझौतावादी थे, न साहित्य में न राजनीति में। आश्चर्य है कि स्वच्छन्दतावादी कवियों में ये अकेले कवि हैं, जिन्हें गाँधीवादी राजनीति कभी भायी नहीं। सन् 46 में छात्र-विद्रोह पर भी उन्होंने कविता लिखी समर्थन में। जिस व्यवस्था का विरोध इधर किया जा रहा है, वह निराला की अनेक रचनाओं में देखा जा सकता है। 'राजे ने रखवाली की' इसी तरह की रचना है। निराला जी की साहित्यिक अवधारणा उनके निबन्ध 'साहित्य की आकांक्षा में' कुछ इस प्रकार अभिव्यक्त हुई है। ''हमारे साहित्य की भी एक ऐसी ही आकांक्षा है, तमाम देश में व्याप्त हो जाने की। साहित्य, देश की वाणी को, देश के ही दिव्य स्वर से सुनाना चाहता है, साथ ही, सब सम्प्रदायों में व्याप्त ओंकार की तरह सबको साथ लेकर अपने निर्विकल्प तत्त्व में लीन कर पृथ्वी के उत्कृष्ट उपादान ज्योतिर्मय सौरमण्डल में लीन हो जाना। साहित्य की यह तरंग जैसे बार-बार उठकर अपने साथ ही अपने साहित्यिकों को लक्ष्य तक उठा देना चाहती है, पर असमर्थ बहुभारग्रस्त साहित्यिक उसके साथ नहीं चल पाते। जिसमें जितनी शक्ति है, उतनी ही दूर तक वह जाता है। अपर साहसी साहित्यिक, दग्ध-पंख सम्पाती की तरह, प्रतिभा की उस महाज्योति से हमेशा के लिए झुलसकर जमीन पर आ जाते हैं। साहित्य की तरंग उसी तरह उठती रहती है।''

हिन्दी साहित्य का तत्कालीन परिस्थितियों में समुचित विकास नहीं हो पा रहा था। जिसके संबंध में निराला जी की अवधारणा यह थी कि शुद्ध साहित्यिक मानदण्डों पर अगर लेखन नहीं होता है तो हिन्दी अपकर्ष को प्राप्त हो जायेगी और निम्न कोटि के लेखकों और शोधकार्यों पर आक्षेप करते हुए कहते हैं, ''सच तो यह है कि बड़े-बड़े आदमियों को हिन्दी लिखने का जरा भी शऊर नहीं साधारण लोग तो कुछ लिख भी लेते हैं। हिन्दी के विकास-युग में इससे दुःख की बात और क्या होगी कि आज तक श्रद्धेय द्विवेदी जी का स्थान रिक्त पड़ा है। उनके कार्य छोड़ने के बाद से अब तक कोई भी ऐसा समर्थ साहित्यिक नहीं नजर आया, जो उस रिक्त स्थान की पूर्ति कर देता। भाषा-मार्जन के साथ-साथ द्विवेदी जी का त्याग भी सम्मिलित है और यही कारण है कि उनके द्वारा साहित्य की आकांक्षा गति के अनुसार पूरी होती गयी- नये-नये लेखक प्रतिभा प्राप्त कर चमकते हुए बढ़ते गये। साहित्य की श्रीवृद्धि के लिए बहुत बड़ी उदारता आवश्यक है। हमें विश्वास है, हमारे मित्र साहित्यिक इस टिप्पणी की बुराइयों को छोड़कर, इसका सार ग्रहण कर साहित्य की महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए शुद्ध हृदय से तत्पर होंगे।

निराला जी ने कुछ निबन्धों के द्वारा साहित्य के सम्बन्ध में अपने विचारों को व्यक्त किया है। 'साहित्य का आदर्श', 'साहित्य का विकास', 'हमारा वर्तमान काव्य', 'साहित्य और जनता', 'समस्यामूलक साहित्य', 'साहित्य का चरित्र' आदि निबन्धों में आपने साहित्य-सम्बन्धी अनेक प्रश्नों पर विचार किया है। आपने साहित्य को व्यापक मानवीय आधार पर प्रतिष्ठित करने पर बल दिया है और आपने साहित्य में सत्य की प्रतिष्ठा का महत्व प्रतिपादित करते हुए कहा है, ''सत्य वही है जो मनुष्य मात्र में है। ज्ञान में हिन्दू-मुसलमान नहीं। विस्तार ही जीवन है। फैलकर अपनी प्रतिभा, कर्म, अध्ययन, उदारता से समस्त ब्रह्माण्ड को अपनाना चाहिए। साहित्यिक उत्कर्ष और मुक्ति का यही मार्ग है।''

निराला जी की काव्य संबंधी अवधारणा

निराला ने अपने भावों और विचारों के अनुरूप विभिन्न काव्य-रूपों को अपनाया है। जब उन्हें भाव की इकाई अथवा हृदय के उच्छलित उद्‌गार को ही व्यक्ति करने के इच्छा हुई है तो वे गीत की ओर झुके हैं, जब उन्हें अपने राष्ट्रीय और सामाजिक विचारों को प्रकट करने की अनुभूति हुई, तब उन्होंने प्रगीतों की सृष्टि की है; जब व्यक्तिगत साधन अथवा किसी गहन उद्‌देश्य के लिए समर्पणशीलता की वृत्ति बलवती हुई है तो उन्होंने आख्यानक प्रगीत लिखे हैं और जब जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति के लिए भारतीयता के साथ युग-सापेक्ष दृष्टि अपनाई तब गीति-नाट्य का सहारा लिया है। इस प्रकार के मुख्य रूप से उन्होंने चार काव्य-रूपों को अपनाया है- (1) गीत, (2) प्रगीत, (3) आख्यानक काव्य और (4) गीति-नाट्य।

निराला जी ने काव्य के सम्बन्ध में नवीन काव्य नामक निबन्ध में यह कहा, ''काव्य प्राणों की सृष्टि है। सीधे प्राणों पर उसका असर पड़ता है। एक पौधे ही कि तरह कवि के मन के आकाश में वह विकास प्राप्त करता हुआ फूलता- फलता है, जिसके फलों का स्वाद पा साहित्य के जन कृतार्थ होते हैं। खड़ी बोली का काव्य अब, प्राणों से सीमाबन्धनों को छोड़कर, बीज के अंकुर से फूटकर बाहर के विस्तार को अपनी छाया द्वारा समाच्छन्न कर रहा है। उसके भविष्य की सुखद शीतलता वर्तमान के प्रसार को देखकर, समझ में आ जाती है। जो लोग अपने बड़प्पन की बाँहें फैला उस पौधे को अपने हाथ समेट लिये हैं। अब उसकी वृद्धि में कोई संशय नहीं रहा।''

निराला जी 'काव्य-कला' को सौन्दर्य की पूर्ण सीमा मानते हैं। वह केवल वर्ण, शब्द, छन्द, रस, अलंकार या ध्वनि के पृथक् सौन्दर्य में सीमित नहीं हो सकती। उसका सौन्दर्य इन सभी के सामंजस्य में है। जैसे फूल की परी कला के लिए 'जड़ तना, डाल, पल्लव और रंग-रेणु-गंध सभी कुछ अपेक्षित है वैसे ही काव्य-कला के लिए शब्द, रस, ध्वनि, अलंकार, छन्द आदि सभी कुछ आवश्यक है।'[2] निराला ने अपनी कला-कृतियों में कला की इस पूर्णता का सदैव ध्यान रखा है। इस पूर्णता की कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए मूर्ति-विधान आवश्यक हैं। निराला जी के शब्दों में, ''प्रायः सभी कलाओं के लिए मूर्ति आवश्यक है। अप्रतिहत मूर्ति- प्रेम की कला की जन्म दात्री है, जो भावना-पूर्ण सर्वांगसुन्दर मूर्ति खींचने में जितना कृतविद्य है वह उतना बड़ा कलाकार है।''[3] निराला जी ने अपनी समीक्षाओं में भी पूर्ण चित्र अंकन की शक्ति को ही सराहा है। काव्य के संबंध में निराला जी कहते हैं, ''मैंने मैं शैली अपनायी'' यह निराला की शैली उपन्यास में कहानी में निबंधों में संस्मरण में वह जिस विधा की भी रचना करते हैं वहाँ जैसे लगता है कि वे स्वानुभूत सत्य की अभिव्यक्ति का प्रयास करते हुए लक्षित होते हैं, विषय निबंध में ही क्यों न हो वे जैसे लगता है कि जिस विषय पर कुछ कह रहे हैं तो वह विषयगत परिस्थितियों का प्रभाव समाज के साथ उनपर भी पड़ रहा है। वहीं वे कथा साहित्य के पात्रों के रूप में या कल्पित रूप में विद्यमान रह कर अनुभूत कहते हैं। निराला की मैं शैली ही बंधनों से मुक्ति का सप्रयास है और परिपाटी मुक्त होकर रचनाधर्मिता अपनाने का उद्‌बोधन करते हैं।

जिस सांस्कृतिक पुनर्जागरण की भूमिका पर छायावाद अधिष्ठित हुआ है, उसके सम्बन्धों में देखने से प्रतीत होता है कि छायावाद की भी मूल प्रेरणा स्वतंत्रता या मुक्ति की कामना है। इन मुक्ति-कामी कवियों की रचनाओं में सर्वत्र इसकी प्रतिध्वनि सुनी जा सकती है। निराला इसके सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि हैं। ये छन्द के बन्धनों में मुक्ति चाहते थे, सड़ी-गली मान्यताओं से मुक्ति चाहते थे, प्रेम-सम्बन्धी पुरातन धारणाओं से मुक्ति चाहते थे, पुराने नैतिक मूल्यों से मुक्ति चाहते थे, साहित्यिक रूढ़ियों से मुक्ति चाहते थे। इसीलिए निराला को विद्रोही या क्रान्तिकारी कहा गया है। मुक्ति का तात्पर्य निषेधात्मक न होकर धनात्मक है। छन्द के प्रबन्ध से मुक्त हो जाने की आवश्यकता पर जोर देते हुए निराला ने परिमल की भूमिका में लिखा है- 'मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्म के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना है। जिस तरह मुक्त मनुष्य कभी किसी तरह दूसरों के प्रतिकूल आचरण नहीं करता, उसके तमाम कार्य औरों को प्रसन्न करने के लिए होते हैं, फिर भी स्वतंत्र। इसी तरह कविता का भी हाल है।' निराला काव्य को सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त देखने के अभिलाषी थे। वे काव्य की मुक्ति में मनुष्य की मुक्ति-चेतना की झलक पाते थे। वैदिक कविता उन्हें इसीलिए मनोहर लगती थी कि उसमें किसी प्रकार के बन्धनों को स्वीकार नहीं किया गया है। वह कविता एक वीर्यवान जाति के स्वतंत्र जीवन के सहज संगीत के रूप में रची गयी है। वे आधुनिक हिन्दी कविता को भी इसी प्रकार छन्द आदि के बंधनों से पूर्णतः मुक्त करना चाहते थे। 'परिमल' की भूमिका में वे लिखते हैं- ''साहित्य की मुक्ति उसके काव्य में देख पड़ती है। इस तरह जाति के मुक्ति प्रयास का पता चलता है। धीरे-धीरे चित्र- प्रियता छूटने लगती है। मन एक खुली हुई प्रशस्त भूमि में विहार करना चाहता है।''[4] कहना न होगा कि यह मुक्त होने की भावना 'निराला' के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता है। यही विशेषता उनके समूचे साहित्य में व्याप्त है। वे कहीं बँध नहीं सके। सामंजस्य में सौन्दर्य देखने वाले 'निराला' साहित्य में तो मुक्ति और बन्धन में सामंजस्य-योग घटित करने में सफल हो सके किन्तु जीवन में यह योग घटित न हो सका। जीवन के बन्धनों को तोड़कर वे मुक्त हो गये, किन्तु वह मुक्ति उनके लिए महँगी पड़ी। जड़-बन्धनों को महत्त्व देने वाला समाज इस विराट-मुक्त पुरुष को न पहचान सका और 'निराला' का व्यक्तित्व और एक हद तक उनका साहित्य भी अपरिभाषित रह गया। निराला जी की कविताओं के सम्बन्ध में बच्चन सिंह ने आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में कहा है- ''छायावादी कवियों में निराला में पुरूषोचित गुण सबसे अधिक था। ऐसे व्यक्ति सौन्दर्यवाद की ओर नहीं जाते। निराला जैसे लोगों में मूर्तिभंजक

का तेवर होता है। वे दूसरों की प्रतिमाएँ भी तोड़ते हैं और अपनी भी। कुकुरमुत्ता (1942) संग्रह की कविताओं में उन्होंने एक ओर छायावादी चेतना को तोड़ा है। तो दूसरी ओर अभिजातीय और वर्गसंघर्ष की चेतना को। इस प्रकार किसी के लिए बहुवस्तु-स्पर्शिनी प्रतिभा के धनी, किसी के लिए महाप्राण, किसी के लिए क्रान्तिकारी चेतना के अग्रदूत, किसी के लिए आत्महन्ता और किसी के लिए अपराजेय पौरूष के मूर्त रूप बनकर रह गये।

निबंध में व्यक्त अवधारणा

निराला जी का निबन्ध साहित्य विविधताओं का कुंज है, इन निबंधों में साहित्य के विवेचन के साथ स्वयं और अन्य साहित्यकारों के कला की व्याख्या के साथ साहित्य के अंगों का निरूपण भी है। जहाँ निराला के निबन्धों में भाषा सम्बन्धी प्रश्नों का विश्लेषण है वहीं युग-चेतना को उद्वेलित करने वाले अनेक गम्भीर प्रश्नों का निर्वचन भी है। निराला ने 'संस्मरण', 'विवाद', 'इन्टरव्यू' आदि विधाओं को भी इसी के भीतर समाविष्ट कर लिया है। ये निबन्ध किसी निश्चित योजना के आधार पर नहीं लिखे गये हैं। गद्य की विधाओं की कलात्मक मर्यादा के अनुसार ये अलग-अलग भी किये जा सकते हैं। आज 'इण्टरव्यू', संस्मरण आदि को पृथक् मर्यादा प्राप्त हो गयी हैं। सामान्यतः इन्हें निबन्धों के परिवार में ही सम्मिलित किया जाता है। 'निराला' जी के 'साहित्य' और 'काव्य' सम्बन्धी विचारों का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। इनके अतिरिक्त जो विचार उनके निबन्धों में व्यक्त हुए हैं उनमें दो बातें प्रधान हैं- साहित्यकार की प्रतिष्ठा और सामाजिक रूढ़ियों का तिरस्कार। हिन्दी-भाषा का प्रबल समर्थन भी निराला जी के निबन्धों में एक प्रमुख मुद्दा बनकर उभरा है। उनके निबन्ध मूलतः विचारात्मक हैं किन्तु उनमें भावात्मक चित्रों एवं आलंकारिक गद्य-विधान की भी कमी नहीं है। इन निबन्धों में 'निराला' जी का व्यक्तित्व पूर्णतः व्यंजित हुआ है। उनकी निर्भीकता, दृढ़ता मुक्तता कलानुराग, दार्शनिकता और राष्ट्र-प्रेम कहीं उनके विचारों के प्रेरक बनकर और कहीं उनके व्यक्तित्व की भंगिमा के अंग बनकर साकार हो उठे हैं। भाव और कला के द्वन्द्व में निराला की स्पष्ट मान्यता है कि ''सबसे अधिक आवश्यक है भाव-प्रवणता, जो साफल्य की एक-मात्र कुंजी है।'' ('भाव और भाषा' शीर्षक टिप्पणी) 'भाव' से भी मतलब केवल भावना से नहीं, बल्कि सम्पूर्ण विषयवस्तु से है, जिसमें विचार का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'नवीन काव्य' शीर्षक टिप्पणी में वे विचार को 'काव्य का ज्ञान-काण्ड' बतलाते हैं और कहते हैं कि ''भविष्य के साहित्यिक विचार ज्यों-ज्यों पुष्ट होते जाते हैं, भविष्य के साहित्यिकों को अधिक मार्जित साहित्य की सृष्टि के लिए सुविधा मिलती जाती है। यही कारण है कि खड़ी बोली के काव्य को बाहरी सुविधाएँ न मिलने के कारण भीतर बड़ी-बड़ी अन्तः प्रेरणाएँ नहीं मिलीं।'' आखिरी वाक्य विशेष रूप से ध्यातव्य है। विचार बाहर से अर्जित होते हैं, लेकिन इसके लिए आवश्यक है कि कवि के भीतर वे बड़ी-बड़ी अन्तः प्रेरणाएँ उत्पन्न करें। कविता में विचारों का विरोध करने वाले भाववादियों को निराला का यह उत्तर है। 'रचनारूप' शीर्षक एक दूसरी टिप्पणी में उन्होंने विचारों का महत्त्व इन शब्दों में प्रतिपादित किया है- ''नवीन रक्त-संचार की तरह नये विचारों का निर्गमागम जब साहित्य तथा समाज में होता है, तभी समाज गतिशील और साहित्य जीवित रह सकता है।'' आदर्श और यथार्थ की समस्या साहित्य की पुरानी समस्या रही है। निराला इन दोनों में से किसी को छोड़ने के लिए तैयार नहीं है। 'रचना-सौष्ठाव' शीर्षक टिप्पणी में वे कहते हैं कि ''संसार में जितने विषय, जितनी वस्तुएँ मन और बुद्धि द्वारा ग्राह्य जो कुछ भी है- वह भला हो या बुरा-रचयिता की दृष्टि में बराबर महत्त्व रखता है।'' इसीलिए जब आदर्श पर जोर दिया जाता है, तो वे यह कहते हैं कि ''सत्साहित्य की सृष्टि के लिए जीवन की सभी दिशाएँ आवश्यक हैं, क्योंकि कोई गिर जाता है, तो उसके गिरने के कारण हैं, वे साहित्य के लिए उतने ही जरूरी हैं जितने उठने वाले कारण'' ('साहित्य का आदर्श' शीर्षक टिप्पणी) और जब यथार्थ पर जोर दिया जाता है, तो वे यह कहते हैं कि ''साहित्यिक यदि किसी समूह के अनुसार चलता है, तो वह उच्चता नहीं प्राप्त कर सकता, जो समष्टि को लेकर चलता है।'' ('रचना-सौष्ठाव') निराला का मलतब साफ है। श्रेष्ठ साहित्य समाज के साथ नहीं, उससे आगे चलता है, लेकिन इतना आगे नहीं कि समाज छूट जाय। इसी में साहित्य और जनता की समस्या का भी हल है। जनता का सौन्दर्य बोध विकसित नहीं होता, वह उपयोगिता को विशेष महत्त्व देती है, इसीलिए साहित्य को पूरी तरह से उपयोगितावादी बना देना ठीक नहीं है।

निराला जी के व्यक्तित्व की दृढ़ता ने उनके विचारों को और अधिक आकर्षक बना दिया। उनके अध्ययन की विशेषता ने उनके कथन की विश्वसनीयता को और अधिक पुष्ट किया है। इस दृष्टि से निराला जी के निबन्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

आलोचना संबंधी अवधारणा

साहित्य में निराला जी आलोचना धर्म को स्वीकार करते हैं और आलोचना को साहित्य के विकास के लिए आवश्यक मानते हैं। 'हिन्दी में आलोचना' शीर्षक टिप्पणी में उन्होंने कहा है कि ''आलोचना साहित्य का मस्तिष्क है। अतः साहित्य के विकास का श्रेय अनेक अंशों में इसे ही प्राप्त है।'' वे आलोचना के कैसे उत्कृष्ट रूप की कल्पना करते थे, यह भी द्रष्टव्य है; ''आलोचना अच्छी वह है, जो कृति से पीछे न रहे, चाहिए कि बढ़ जाये।'' (उपर्युक्त), 'साहित्य में समालोचना' शीर्षक टिप्पणी में वे हमें आलोचना-कर्म के खतरे से परिचित कराते हैं; ''प्रत्येक लेखक, जो अपनी सच्ची मौलिकता से किसी कृति को जन्म देता है, अपना एक निराला वायुमण्डल अपने साथ रखता है। सम्भव है, उसकी कृति के भीतर पैठने के लिए आलोचक को अपने सभी पूर्व विचारों को बदलना पड़े। सहृदयतापूर्वक आलोचक जब तक ऐसा करने को प्रस्तुत नहीं रहता, वह लेखक की सच्ची आत्मा तक, जो उसकी कृति के भीतर बोल रही है, पहुँचने की आशा नहीं कर सकता।'' अपनी आलोचना में निराला ने एक बात पर बहुत बल दिया है- दूसरे देशों की सांस्कृतिक उपलब्धियों को स्वीकार करने पर। वे यह मानते थे कि साहित्य का विकास तभी होगा, जबकि परिवर्तित परिस्थितियों और समय के अनुसार वह चलेगा। इसके लिए यह जरूरी था कि संकीर्णता छोड़कर मुख्य रूप से पश्चिमी जगत् से सम्बन्ध स्थापित किया जाय। 'नवीन साहित्य और प्राचीन विचार' शीर्षक टिप्पणी में वे कहते हैं; ''विजातीय भावों के मिश्रण से ही संस्कार हो सकता है। यदि किसी सृष्टि को प्रगतिशील रखना है तो उसकी शक्ति बढ़ाने के लिए विजातीय भावों का उसमें समावेश करना अत्यन्त आवश्यक है। यह भाव-मिश्रण साहित्य के लिए भी आवश्यक है, नहीं तो कुछ काल तक एक ही संस्कार और एक ही प्रकार के विचारों की नेमि में चक्कर काटता हुआ साहित्य भी निर्जीव हो जाता है।'' 'निराला' जी 'रवीन्द्र कविता कानन' तथा 'पंत और पल्लव' इन दो कृतियों में आलोचक रूप में हमारे सामने आते हैं। इन कृतियों के अतिरिक्त उनके अनेक समीक्षात्मक निबन्ध हैं जिनमें उनका आलोचक रूप लक्षित होता है। 'निराला' में कला के मर्म को परखने की अद्भुत क्षमता है। वे भाव, भाषा, छन्द, लय, संगीत तथा इनके सामंजस्य से संघटित सौन्दर्य-सृष्टि के मूल्य और प्रभाव को लक्षित करने में प्रवीण हैं। किन्तु उनकी सबसे बड़ी दुर्बलता सन्तुलन का अभाव है। 'रवीन्द्र' की कविता को मूल बंगला में पढ़कर उसका आस्वादन करने वालों में 'निराला' अग्रणी थे। रवीन्द्र के काव्य-सौन्दर्य को उन्होंने पूर्णतः परखा था। रवीन्द्र के प्रति उनके मन में एक स्पर्धा का भाव है और यह भाव उनकी आलोचना में झलक मार जाता है। 'रवीन्द्र' का मूल्यांकन शान्तिप्रिय द्विवेदी ने भी किया है और अभिभूत होकर किया है। 'निराला' ने उनके महत्त्व को सहज भाव से स्वीकार करते हुए भी उनकी दुर्बलताओं की ओर इंगित किया है और स्वयं वह देने की चेष्टा की है जो रवीन्द्र में नहीं है। 'पंत की आलोचना' उन्होंने क्षुब्ध मन से की है। 1934 ई0 में पंत की 'ज्योत्स्ना' के सम्बन्ध में विचार करते हुए जिस 'निराला' ने लिखा था- ''श्री सुमित्रानन्दन पंत की 'ज्योत्स्ना' भी मैंने देखी है। वे जैसे प्रतिभाशाली सुकुमार कवि हैं, 'ज्योत्स्ना उनके अनुरूप ही है। काव्य और विचार दोनों का उत्कृष्ट सामंजस्य इसमें हैं।'' वही 'निराला' 'पंत और पल्लव' (1949 ई0) में लिखते हैं- ''यह दोष पंत जी की तमाम कविताओं में है और यह केवल इसलिए कि वह पंक्ति-चोर हैं, भाव-भण्डार के लूटने वाले डाकू नहीं। छकने के लिए एक चुल्लू से ज्यादा नहीं चाहते, शायद हज्म न कर सकने का खौफ करते हैं।'' आलोचक के रूप में 'निराला' का यह असन्तुलन उनकी स्थायी वृत्ति नहीं है। जहाँ कहीं वे स्वस्थ चित्त होकर काव्य-सौन्दर्य का उद्घाटन करते हैं, वहाँ उनका आलोचक अत्यन्त सजग और संवेदनशील रूप में सामने आता है और उनका मूल्यांकन हमें चकित कर देता है। गोस्वामी तुलसीदास और कवीन्द्र रवीन्द्र की तुलना करते हुए वे कहते हैं- ''गोस्वामी जी का काव्य-चमत्कार भक्ति के भीतर से है, वह भक्त कवि हैं। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ मानवीय स्फूर्ति के भीतर से गुजरे हैं, वह केवल कवि हैं। भक्ति के भीतर से गोस्वामी तुलसीदास का जो लक्ष्य रहा, मानवीय स्फूर्ति, सौन्दर्य और भावनाओं के भीतर से वही रवीन्द्रनाथ का। भक्तिरस से परिप्लावित लोकोत्तरानन्द दायक चित्रों के खींचने में तुलसीदास अद्वितीय।'' अपार सौन्दर्य और विराट चित्रण के भीतर से काव्य और दर्शन का रंग चढ़ाकर चित्रांकन करते हुए सत्य के द्वार तक ले जाने में रविन्द्र नाथ अद्वितीय हैं। कहना न होगा कि गोस्वामी तुलसीदास और कवीन्द्र रवीन्द्र के काव्य के केन्द्रीय चेतना का यह विश्लेषण अत्यन्त सटीक और सारगर्भित है। मध्यकालीन भक्त कवियों के अतिरिक्त खड़ी बोली के कवियों- आयोध्या सिंह उपाध्याय, महावीर प्रसाद द्विवेदी, नाथूराम शंकर शर्मा 'शंकर', श्रीधर पाठक, रामचरित उपाध्याय, रामचन्द्र शुक्ल, रूपनारायण पाण्डेय, मैथिलीशरण गुप्त, 'प्रसाद',

'पंत', माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', आदि की जो संक्षिप्त समीक्षा 'निराला' जी ने की है, वह इन कवियों के वैशिष्ट्य निरूपण की दृष्टि से आज भी प्रासंगिक है। मेरे गीत और कला शीर्षक से 'निराला' जी ने एक आलोचक की हैसियत से स्वयं अपनी कला का जो विवेचन किया है, वह प्राचीन पद्धति के मर्मी तथा आधुनिक शैली वैज्ञानिक समीक्षा के अग्रणी दोनों ही प्रकार के आलोचकों को चकित कर देने वाला है। यह विवेचन वर्ण-विन्यास-सौन्दर्य वर्ण-संगीत, काव्यार्थ, पद-विन्यास, शब्द-लालित्य, लाक्षणिक-प्रयोग-वक्रता, रूप-चित्र., भावान्विति आदि सौन्दर्य- विधायक तत्त्वों के सूक्ष्म विवेचन पर आधृत है। कहना न होगा कि 'निराला' का आलोचक व्यक्तित्व उनके कवि-व्यक्तित्व का पूरक और प्रतिस्पर्धी है।

निराला जी अपने पत्रों के सम्पादन में जहाँ सशक्त आलोचक के रूप में आये हैं तो 'चाबुक' और 'कसौटी' नामक दो शीर्षक स्तम्भ जो उनके पत्रों में प्रकाशित होते थे, समकालीन कवि एवं आलोचकों की समीक्षा से पूर्ण है। उपरोक्त शीर्षक के द्वारा निराला जी ने न सिर्फ समकालीन लेखकों की कटु आलोचना की है अपितु उनके द्वारा की गयी गलतियों का सुधरा रूप प्रस्तुत किया है।

उपन्यास संबंधित अवधारणा

'निराला' का कथा-साहित्य उनकी जीवनगत परिस्थितियों, संस्कारों एवं विविध मनोदशाओं के अतिरिक्त तत्कालीन समाजिक-अवस्था और तद्विषयक आन्दोलनों से प्रभाव ग्रहण का निर्मित हुआ है। निराला जी अपने 'कथानक साहित्य लेख में कहते हैं-

''हिन्दी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार, कहानी-लेखक इस भूमि में नहीं आये। अब विवेचन शुरू हुआ है और यही किसी-किसी उपन्यासकार तथा कहानी-लेखक की विशेषता है। हमारे अब तक के पुराने उपन्यास-लेखकों ने समाज से जैसे डरकर नवीन सामाजिकता से अपने उपन्यासों को अलंकृत नहीं किया, उनमें चित्रण की उतनी प्रबल शक्ति, मौलिक विवेचन की अबाध धारा नहीं। वे प्राचीन संस्कारों के भीतर ही जो कुछ कर सके, करते रहे, करते जा रहे हैं। आदर्शवादी होने पर भी युवती विधवा के प्रेमी को मार देना कोई आदर्शवाद न हुआ, क्योंकि सभी जगह विधवाओं के प्रेमी पंचत्व को प्राप्त होंगे, ऐसा कोई प्राकृतिक नियम नहीं। अवश्य उनके पात्रों में जहाँ कहीं विजाति-प्रेम पैदा हुआ, वहाँ एक के सिर बराबर काल नाचता रहा। केवल प्रेम दिखाकर, अन्त में एक लम्बी निराशा की साँस छोड़वाकर छोड़ देना न तो कोई आदर्शवाद है, न किसी समस्या का ही विवेचनपूर्ण समाधान। कुछ लेखकों ने सामाजिक दुश्चित्रों का ज्यों का त्यों चित्रण किया है, पर वहाँ स्थूल घटनाएँ-ही-घटनाएँ हैं, मनस्तत्व कही कुछ भी नहीं। ऐसा समाज में होने पर भी कि मिश्रजी ने तीन शादियाँ दहेज के लिए कर लीं, फिर बड़ी पत्नी उन्नीस साल की उम्र में सौंतों के पुरश्चरण के कारण या किसी दूसरी वजह से घर से निकलकर चौराहे के एक्के पर बैठ गयी और एक्के वाले के पूछने पर कि कहाँ ले चलूँ, कह दिया- 'जहाँ तुम्हारी तबियत हों; यह उपन्यास-साहित्य में साहित्यिकता के भीतर से किसी समस्या का समाधान न हुआ; पुनः इस तरह के चित्रण होने पर जो फल होता है, न होने पर कदाचित् उससे अच्छा हो सकता है।''[5] उनके कथा-साहित्य का उद्देश्य सुधारवादी आन्दोलनों की भाँति सुधार करना नहीं है। 'निराला' समस्याओं और सामाजिक स्थिति को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करने में अत्यंत दक्ष थे, किन्तु उनकी प्रकृति उपदेश देने की नहीं थी। इसीलिए उनका कथासाहित्य विचारोत्तेजक है। सामाजिक विषमता और विकृति को देख पाठक के मन में उसके प्रति अपने आप ही वितृष्णा और घृणा उत्पन्न हो जाती है, जिससे वह उनसे मुक्त होने की बात सोचने लगता है। अतः 'निराला' का दृष्टिकोण बड़ा ही स्वस्थ है और उनके कथा-साहित्य में समाज के परिष्कार की प्रच्छत्र भावना सन्निहित है। निराला जी अपने 'रचना रूप' नामक निबन्ध में उपन्यास के सम्बन्ध में ये शब्द कहें हमारे साहित्य की यही शोचनीय दशा है। जिधर भी देखिए रचनाओं में प्राचीन रूढ़िवाद अन्धपरम्परा ही देख पड़ेगी। काव्य-साहित्य में राम और कृष्ण पर आज भी काफी लिखा गया और लिखा जा रहा है। लिखने की बात नहीं, बात रचना की है। जो नयी रचनाएँ हुई हैं, उनमें राम और कृष्ण के सम्बन्ध में नवीन दृष्टि नहीं पड़ी; बल्कि कवियों की अदूरदर्शिता ने भक्ति आदि की भावना से, उन्हें प्रकृत मनुष्यों के रूप में ग्रहण कर, जनता को गिरा दिया है। पहले के काव्यों में राम और कृष्ण के ज्ञानमय जो दिव्य रूप हैं, उन्हें समझकर समाज कुछ अग्रसर हो सकता है। आज के साहित्य को पढ़कर कल्पनाप्रसूत भक्ति-विशेष राम या कृष्ण की अनुगामिनी होकर दास्यभाव ग्रहण करती है। इसी प्रकार की देश तथा विश्व-सम्बन्धनी रचनाएँ हैं। कहीं भी रचना को कला के भीतर से उत्कृष्ट महत्व नहीं

दिया जा सकता। कुछ रचनाएँ हैं, पर वे नहीं के बराबर हैं। उपन्यास-साहित्य भी इसी प्रकार सूना है। देहाती कुछ चित्रण हैं, पर इनसे साहित्य की विभूति नहीं बढ़ती। हिन्दी के लिए इससे बढ़कर लज्जा भी बात और क्या होगी कि उर्दू के लेखक, उर्दू के जानकार, जिन्हें हिन्दी के सन्धि-समास का भी ज्ञान नहीं, अच्छे उपन्यास-लेखक हैं। यह उर्दू के प्रति हिन्दी की वही पराधीनता है, जिसका सूत्र-रूप में पीछे उल्लेख किया जा चुका है। अस्तु, इन उपन्यासों से समाज को नयी स्फूर्ति, नया बल नहीं मिला। कुछ है सुधार-रूप से, पर वह इतना निष्प्राण और जड़ है कि वह कंकाल की ही तरह है, जिसे देखकर लोग और डर जाते हैं, सजीव देह की तरह सौहार्द से छलकता हुआ नहीं, जिसकी ओर मन आप खिंच जाय। इन उपन्यासकारों ने समाज की पुरानी लकीर पीटी है। उसी जगह खड़े हुए बढ़ने का जरा इशारा भर किया है; खुद नहीं बढ़े। इसलिए उनकी कृति समाज को बढ़ा नहीं सकी। निराला जी के प्रथम चार उपन्यासों में रोमांस के साथ-साथ यथार्थवाद का चित्रण है। किन्तु बाकी के सभी उपन्यास पूर्णतया यथार्थवादी हैं। 'अप्सरा', 'अलका', 'प्रभावती', 'निरूपमा', 'कालेकारनामे', 'चोटी की पकड़', 'चमेली', 'इन्दु-लेखा', 'औपन्यासिक संस्मरणात्मक रेखाचित्र', 'कुल्ली भाट' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' है। निराला जी के आथम उपन्यास 'अप्सरा' में राजनैतिक यथार्थ परतंत्रता, स्वदेशी-परदेशी शोषण एवं भारतीय समाज स्त्री विमर्श, जातीय भेद, ग्राम्य यथार्थ, धार्मिक कुरीतियों एवं सामाजिक स्थिति का यथार्थ अपरोक्ष अंकन हुआ है। वहीं वेश्या समस्या के निदान का प्रयास किया गया है। तो 'अलका' में निराला जी छायावाद की सौन्दर्य कल्पनामयी भूमि को छोड़ कर जीवन के यथार्थ की ओर अधिक उन्मुख रहे हैं। प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से तद्युगीन राजनैतिक परिवेश, सामन्ती शोषण, ग्राम्य जीवन, गुलामी, स्त्री जीवन का करूण यथार्थ, सर्वस्वतंत्रता, सामाजिक विकृतियों के विरूद्ध संघर्ष का सफलतापूर्वक चित्रांकन हुआ है। तृतीय उपन्यास 'प्रभावती' के माध्यम से मध्यकालीन भारत का राजनैतिक यथार्थ, देश दुर्दशा, राजाओं का दम्भ, वैमनस्य, स्वार्थ, अदूरदर्शिता, अनिर्णय, अविश्वास, असुरक्षा, आपसी फूट, जातीय भेद ऐतिहासिक रोमान्स, ऐतिहासिक वातावरण, रीतियों, रूढ़ियों आदि के चित्रांकन द्वारा यथार्थ की विवेचना की गयी है। 'निरूपमा', पूर्व के उपन्यासों की अपेक्षा अधिक यथार्थवादी हैं। प्रस्तुत उपन्यास के पात्र जहाँ यथार्थवादी रूप में अवतरित हैं, वहीं संवादों के माध्यम से भी यथार्थवाद का प्रस्फुटन हुआ है। 'निरूपमा' में जहाँ प्रगतिशील और रूढ़िवादी इन दो सामाजिक स्थितियों का समानान्तर चित्रण हुआ है। वहीं ग्रामीण समाज की स्वार्थपरता, कटुता का यथार्थ अंकन हुआ है। औपन्यासिक संस्मरणात्मक रेखाचित्र 'कुल्ली भाट' में निराला जी स्वयं पात्र के रूप में अवतरित हैं। निराला जी कुल्ली के माध्यम से जहाँ अपने जीवन से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों का उद्घाटन किया है। वहीं जातीय भेद, जन आन्दोलन द्वारा चरित्र निर्माण, यौन कुण्ठा, महामारी एवं डलमऊ के प्राकृतिक चित्रण को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त किया है। वहीं 'बिल्लेसुर बकरिहा' में ऐसे यथार्थवाद की अभिव्यंजना की है। जिसमें लाभ की दृष्टि सर्वोपरि रहती है। निराला जी ने प्रस्तुत उपन्यास में भारतीय किसान की जातिगत विशेषता को अंकित किया है कि वह अनेक कठिन परिस्थितियों में अपना धैर्य नहीं खोता और अपने निश्चयों की प्राप्तियों के लिए सतत् संघर्ष करता रहता है। साथ ही यथार्थ के दूसरे पहलू का भी अंकन किया गया है, जिसके कारण अपने धैर्य और शक्ति का अपेक्षित लाभ नहीं उठा पाता। इसके पीछे उसका अनपढ़ होना, अंधविश्वासों से भरा होना, ग्रामीण सामाजिक जीवन में बिखराव एवं छल प्रपंच का यथार्थ अंकन किया गया है। तो 'चोटी की पकड़' में स्वदेशी आन्दोलन का चित्रण किया गया है एवं 'काले कारनामे' में गाँव के तिकड़म ग्रामीण समाज के ईर्ष्याद्वेष, मान, अपमान, जमींदारों के आपसी झगड़े, पुलिस थाना, आदि का चित्रण किया गया है। 'चमेली' निराला साहित्य में ग्रामीण समाज के यथार्थवादी चित्रण ठेठ देहाती भाषा के कारण जहाँ विशिष्ट स्थान रखता है, वही खेतों के यथार्थ वर्णन के रूप में गाँव का प्राकृतिक वातावरण सजीव हो उठा है। अंतिम उपन्यास 'इन्दुलेखा' में निराला जी ने ग्रामीण जीवन को वाणी देने का प्रयास किया है। अगर 'इन्दुलेखा' को निराला जी पूर्ण कर पाते तो इसकी गणना श्रेष्ठ यथार्थवादी उपन्यासों में होती।

कहानी संबंधी अवधारणा

निराला ने अपनी कहानियों के माध्यम से मनुष्य-मनुष्य के बीच जाति, धर्म तथा वर्ग के कटघरे को निस्सार बताकर शुद्ध मानव के रूप में आपसी सम्बन्धों का नया मानवीय धरातल दिया है। उन सम्बन्धों में नयी मानवीय संवेदना के सूत्र जोड़े हैं। उन सम्बन्धों को जोड़ने के लिए आकर्षण चरित्र तथा व्यक्तित्व की महानता, व्यक्तित्व के सौन्दर्य-बोध तथा जीवनमूल्य के लिए परिवेश तथा नए आयाम प्रदान किए हैं। निराला ने अधिकांशतः दमित, दलित और उपेक्षित वर्ग में अथवा व्यक्ति चाहे वह

समाज-व्यवस्था, सामाजिक और आर्थिक वैषम्य, सामाजिक वर्णनाओं, वर्ग-विशेष अथवा व्यक्ति-विशेष किसी से भी दबाया हुआ, पीड़ित और उपेक्षित हो। निराला जी की पहली कहानी 'क्या देखा' वेश्या समस्या पर आधारित है, वहीं नारी वर्ग से सम्बन्धित अन्त-र्जातीय विवाह, विधवा विवाह एवं जातीय रूढ़ियों से अभिशप्त नारी की दयनीय स्थिति का यथार्थ अंकन किया है। निराला जी ने अपनी कहानियों में त्याग सहानुभूति सहिष्णुता क्षमा के भावों को जहाँ स्थान दिया है, वहीं अपने रियासती अनुभवों पर आधारित कठिन अत्याचारों एवं विलासिता का यथार्थ अंकन किया है, वहीं निराला जी ने विजातीय विवाह, विधवा विवाह, वृद्ध विवाह से सम्बद्ध समस्याओं का अपनी कहानियों में यथार्थ अंकन किया है वहीं सामाजिक रूढ़ियों को पैरों तले रौंद कर उस पर विजय करती नारी के चित्रण में यथार्थ सफलता प्राप्त की है। निराला जी की कहानियों में गाँव की मूल प्रकृति, खुली धूप, ताजी हवा और खड़ी फसल है, तो दूसरी ओर अभावग्रस्त किसान, सड़ी गली रूढ़ियों का दास ग्रामीण समाज और वर्णों के छोटी जाति वालों पर नृशंस अत्याचार आदि का चित्रण हुआ है। निराला जी का व्यंग्य उनकी कहानियों में शैलीगत विशेषता के रूप में उभर कर आया है। निराला जी ने जहाँ भारतीय पुरुष समाज पर उसके अपने स्वार्थ के लिए गढ़े हुए आदर्शों पर व्यंग्य किया है। वहीं निराला जी की कहानियों में नारी की विडम्बना पूर्ण स्थिति का चित्रण मिलता है तथा उनके स्त्री पात्रों में अन्याय से लड़ने की शक्ति प्रदर्शित हुई है। चतुरी चमार का यथार्थ एक ओर भारतीय समाज की वर्णक्रम व्यवस्था की उपयोगिता पर प्रश्नचिह्न लगाता है, तो 'देवी' कहानी की पगली समाज के वीभत्स यथार्थ का एक जीवित रूप है।

समाचार पत्रों में व्यक्त साहित्यिक अवधरणा

निराला जी का सम्बन्ध कई पात्रों से था। उन्होंने रामकृष्ण मिशन से प्रकाशित 'समन्वय' के सम्पादन के अतिरिक्त 'मतवाला' के सम्पादन मण्डल में रहकर 'चाबुक' और 'कसौटी' स्तम्भों का नियमित लेखन किया था और सुधा में लम्बी अवधि तक संपादकीय लिखा था। यही नहीं रंगीला नामक पत्र के तो वे सम्पादक, लेखक प्रूफ रीडर सभी कुछ थे। निराला जी ने अपनी टिप्पणियों के माध्यम से न केवल जनता को शिक्षित किया हैं; वरन् उसे अपने अधिकारों के प्रति सचेत भी किया है। बेकारों और मजदूरों की समस्याओं के समाधान का मार्ग दिखाया है। देश की स्वतंत्रता के लिए साहस त्याग और बलिदान की आवश्यकता पर बल दिया है। मानवता के एक सजग प्रहरी के रूप में उसके विकास की संभावनाओं का दिशा-निर्देश किया है।

निराला जी के पत्रों में साहित्य-सम्बन्धी अनेक त्रुटियों पर अपने पत्रों के माध्यम से सुधार संबंधी दृष्टिकोण को अभि-व्यक्त कर तत्कालीन साहित्यिकों द्वारा किए जा रहे साहित्यिक मानदण्डों के उल्लंघन पर आक्षेप किया है निराला जी द्वारा जो अपने पत्रों में विविध शीर्षक स्तम्भों द्वारा अनेक भाषा सम्बन्धी, व्याकरण सम्बन्धी त्रुटियों को खोजकर उनका शुद्ध रूप दिया गया। उदाहरण स्वरूप 'साहित्य की मर्यादा' शीर्षक वक्तव्य में सरस्वती सम्पादक ने 'वे सभी लोगों के लिए पूज्य है' वाक्य का प्रयोग किया था।[6]

निराला के अनुसार यहाँ 'लिए' शब्द व्यर्थ है। इसे निकालकर उक्त वाक्य 'वे सभी लोगों के पूज्य हैं।' होना चाहिए था।''[7] इसी प्रकार अगस्त 1923 की 'सरस्वती' में कोरम पूरा भी होता है। तो सब न सही अधिकांश भी मेम्बर नहीं आते' वाक्य प्रकाशित हुआ था।[8] जिसे निराला जी ने अशुद्ध ठहराया और कोरम पूरा (भी) होता है तो भी अधिकांश मेम्बर नहीं आते' के रूप में शुद्ध किया।''[9] भाषा सम्बन्धी दोषों के अतिरिक्त निराला जी ने सरस्वती सम्पादक द्वारा व्यक्त भावों के औचित्य पर भी विचार किया है 'सरस्वती' जुलाई, 1923, 'विविध विषय' के तीसरे नोट के अन्त में- ''असफलता भी उन्हें अपने निश्चय से डिगा सकती हैं।'' आपके 'अपने' का व्यवहार विधि विरूद्ध है। इस वाक्य में कहीं विराम चिह्नों से शब्दार्थ के पृथक न होने के कारण 'अपने' का सम्बन्ध, व्याकरण के नियमानुसार 'असफलता' से हो जाता है। फिर अर्थ का यथार्थ रूप क्या बन जाता है पाठक स्वयं समझे। अगर आप अपने न लिखते तो क्या आपके भाव में कोई अभाव रह जाता।''[10]

जीवनी-साहित्य के संबंध में निराला जी की अवधारणा

निराला जी ने जीवनी-साहित्य की भी रचना की है। निराला जी ने जीवनी के सम्बन्ध में भक्त ध्रुव की भूमिका में ये शब्द कहे है- ''किसी देश को उन्नति के शिखर पर फिर से संस्थापित करने का सबसे उत्तम उपाय यही है कि उसके बालकों की सार्वभौमिक

शिक्षा की ओर ध्यान दिया जाय। उनके सामने देश के आदर्श-बालकों के चरित्र रखे जायें। इस तरह उनकी शारीरिक दशा का सुधार तो होगा ही साथ ही उनकी मानसिक और नैतिक उन्नति भी हो सकेगी और निकट भविष्य में वे देश के मुखोज्ज्वलकारी रत्न हो सकेंगे।'' (भूमिका, नि0 र0, भाग-7)

अनुवाद के संबंध में अवधारणा

अनुवाद कार्य में निराला की रूचि दृढ़ चेतना का सहज परिणाम थी। निराला अनुवाद सम्बन्धी किन नियमों में आस्था रखते थे उसका अनुशीलन प्रस्तुत सन्दर्भ में आवश्यक जान पड़ता है। उनके अनुसार, ''आम भाषाओं पर अनुवादक का पूर्ण अधिकार होना चाहिए। अनुवादक को सदामूल के अर्थ पर ध्यान रखना चाहिए। उसी अर्थ को दूसरी भाषा में परिष्कृत कर देने की चेष्टा करनी चाहिए। यदि अनुवादक दब गया, मूल भाषा को पढ़कर उसके भाव-गाम्भीर्य पर अपना अधिकार न जमा सका तो उसे सफलता नहीं हो सकती।''[11] स्पष्टतः निराला ने अनुदित कृति के अक्षरशः अनुवाद पर बल नहीं दिया है। यदि मूल कृति में कहीं अभिव्यंजना-वैशिष्ट्य है अथवा किसी मुहावरे का विदग्धतापूर्ण प्रयोग हुआ है तो अनूदित कृति में भी वे उसी ढंग का सौष्ठव चाहते थे। उनके अनुसार यह तभी सम्भव है जबकि अनुवादक दूसरी भाषा के साहित्यिक और स्थानीय रूप से पूर्णतः परिचित हो। स्पष्ट है कि निराला ने अनुवाद-कला के सम्बन्ध में पर्याप्त उदारतापूर्वक विचार व्यक्त किए हैं और कलापक्ष की अपेक्षा भावपक्ष पर अधिक बल दिया है।

भाषा संबंधी अवधारणा

भाषा की समस्या सभी श्रेष्ठ कवियों के समक्ष विद्यमान रहती है। कवि की प्रतिभा केवल नई वस्तु का उन्मेष नहीं करती, वह उसके अनुरूप भाषा का नया विन्यास भी करती हैं। नवीन विन्यास के द्वारा प्रत्येक श्रेष्ठ कवि भाषा पर अपनी मुद्रा अंकित करता है। छायावाद युग में नई चेतना भूमियों की अभिव्यक्ति के लिए कवियों ने जिस गंभीरता से भाषा-निर्माण के प्रयत्न किए है। उसके मध्य में भाषा-प्रयोगों के वैविध्य की दृष्टि से निराला सबसे आगे हैं। हिन्दी भाषा की प्रकृति से उन्हें कितना गहरा, परिचय था, यह हिन्दी की विशिष्ट ध्वनियों के संबंध में उनके वक्तव्यों से भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है। निराला जी के 'भाषा' सम्बन्धी निबन्ध में उनके कुछ वक्तव्य द्रष्टव्य है। ''हमारे साहित्य में धीरे-धीरे अब यह विचार जोर पकड़ता जा रहा है कि हमें बहुत ही सीधी भाषा का प्रयोग करना चाहिए, यद्यपि अभी मुश्किल और ठीक-ठीक मुश्किल लिखने की दो-एक को छोड़कर किसी भी साहित्यिक को तमीज नहीं। सच तो यह है कि अभी हिन्दी की प्रारम्भिक दशा ही चल रही है, अधिकांश अच्छे पढ़े-लिखे पदवीधारकों को भी शुद्ध हिन्दी लिखना नहीं आया। इस संदर्भ में प्रमाणों की किसी भी पत्र के दफ्तर में कमी न होगी। ऐसी दशा में सीधी हिन्दी लिखने के लिए पूरी ताकत से तिर्यक तूर्य-ध्वनि उठाने का क्या कारण, सिवा इसके कि सुबह को साहित्यिक अजां देने वाले अपनी आवाज से अपनी ही सबसे पहले जगने की खबर बेखबरों को भेज रहे हैं? मुमकिन है, एक दिन लोग यह भी कहने लगें कि भाव सीधे होने चाहिए। जिस तरह मनुष्यों के अनेक रंग, अनेक जातियाँ और अपने ही साहित्य के भीतर अनेक बोलियाँ प्रचलित हैं, उसी तरह भाषा का सारल्य और क्लिष्टता का भी विचार है। किसी एक हद के अन्दर भाषा की प्रकृति कभी बँध नहीं सकी। किसी भी भाषा के भीतर उसका मुक्त रूप दृष्टिगोचर होगा। ब्रजभाषा और खड़ीबोली की तरह कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि भाषा ने अपना पहला प्रवाह-पथ ही छोड़ दिया है। एक ही काल में बहती हुई भी भिन्न-भिन्न भूमियों के कारण गंगा और यमुना के जलों की तरह भाषा के कृति-फल जुदा रंग और जुदा स्वाद लेकर आये। संस्कृत में माघ और मेघदूत एक ही तरह के नहीं। मिल्टन और टेनिसन भाषा में बड़ा फर्क रखते हैं। एक ही समय के बायरन और शैली भाषा और भावों में भिन्न हैं। सनेही जी और मैथिलीशरण यथेष्ट अन्तर रखते हैं। 'हरिऔध जी' और शंकर जी के सुभाषितरत्न एक ही-सी हिन्दी में नहीं चमकते। हम अपने पत्र में सब तरह की क्लिष्ट और सरल भाषाओं को जगह देते हैं। दूसरे पत्रकारों की तरह, बल्कि उनसे कुछ अधिक हमें यह अनुभव हो चुका है कि देश में, खासतौर से हिन्दीभाषी, प्रान्तों में, शिक्षा का बहुत थोड़ा प्रसार हो पाया है। अंगरेजी और उर्दू के मुकाबले हिन्दी का और भी कम इसलिए हमारी पत्रिका तथा पुस्तकों की भाषा कुछ क्लिष्ट होने पर उनकी खपत कम होती है, हमें घाटा उठाना पड़ता है। यह घाटा हिन्दी के किसी भी दूसरे पत्रकार से

हमें अधिक हो सकता है, जब हम हिन्दी को पुष्पित करने के उधेश्य से उच्च भावों और क्लिष्ट भाषा को आश्रय देने के पक्ष में होंगे। पर हिन्दी के विशेष लाभ के विचार से हमने अपने घाटे की तरफ उतना ध्यान नहीं दिया। हम अपने ही मुँह अपनी तारीफ नहीं करना चाहते, उपयोगिता एक दिन स्वयं अपना स्थान प्राप्त कर लेगी।''[12]

निराला जी के नाटक सम्बन्धी दृष्टिकोण

निराला जी मानव-मनोभावों की अभिव्यक्ति का माध्यम साहित्यिक विधा नाटक को भी मानते हैं और नाटक के सम्बन्ध में आपने 'नाटक' नामक निबन्ध में अपने विचार इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं। ''भावनाओं के ऐसे आचार-कार्य के लिए नाटक सबसे अधिक सक्षम होते हैं। साहित्य को सदैव यह आवश्यकता रही है। आज अंगरेजी-साहित्य के स्वनामधन्य नाटककार बर्नार्ड शाँ महोदय को बुरी क्रैस्त-भावनाओं का उच्छेद ही जाति के लिए कल्याणकारी मालूम दे रहा है। अपने नाटकों में उन्होंने नवयुग की विचारधारा अनेक तरंग-भंगों से प्रवाहित की है। जनता उनका आदर कर रही है।''[13] हिन्दी को नये युग के नाटकों की बड़ी आवश्यकता है। हिन्दी के साहित्यिक नवीन भावनाओं का महत्त्व अभी तक अच्छी तरह नहीं समझ सके थे। वे ब्रजभाषा के प्रभाव के कारण प्राचीन वातावरण में ही विचरण कर रहे थे। इसलिए मौलिक बुद्धि का विकास उनमें नहीं हुआ। आज हिन्दी को जिन भावनाओं की जरूरत हैं, वे अपनी सर्वोच्च स्थिति में ब्रजभाषा साहित्य से बढ़कर अवश्य नहीं पर उनके विकास की प्रथाएँ निस्सन्देह भिन्न हैं।

निष्कर्षतः सापेक्षिक दृष्टि से निराला के साहित्यिक चिन्तन की दृष्टि गद्य साहित्य में निबन्ध रचना के द्वारा अधिक स्पष्ट हुई। उन्होंने सामाजिक, साहित्यिक, जीवनीपरक, संस्मरणात्मक और दार्शनिक-धार्मिक विषयों पर निबन्ध-रचना की है। निराला के निबन्धों की सर्वप्रमुख प्रवृत्ति उनका प्रतिक्रियात्मक दृष्टिकोण है। उन्होंने प्रत्येक विषय को स्वनिर्मित कसौटी पर कसकर उसके प्रति अपनी प्रतिक्रिया को व्यक्त किया है। यह प्रतिक्रिया कथानक साहित्य के साथ भाषा, नाटक, संस्मरण या 'काव्य या साहित्य' की सुरक्षा, आदि के रूप में व्यक्त हुयी है। वहीं ज्वलन्त तत्कालीन सामाजिक समस्याओं पर भी प्रकाश डालने का प्रयास किया है। न केवल निबंध रचना के कारण निराला के काव्य-गद्य पक्ष के विवेचन में उनकी साहित्य संबंधी अवधारणा के कारण सहायता की प्राप्ति होती है, अपितु उनके साहित्यिक समझ रचना धर्म में अन्य साहित्यकारों के सपेक्ष निराला क्या चाहते हैं और किस रचना भूमि को वे मान्यता देते हैं यह उनके निबंधों से स्पष्ट हो जाता है और उनके समस्त रचना धर्मिता को समझने में उनकी साहित्यिक अवधारणा सहायक बनती है और इससे अन्य साहित्यकारों को रचना में लाभ भी प्राप्त होता है।

Footnotes

[1]हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास -बच्चन सिंह, पृष्ठ संख्या 345
[2]आबन्ध-प्रतिभा, पृष्ठ संख्या 272
[3]निराला रचनावली-5, पृष्ठ संख्या 368
[4]परिमल की भूमिका, पृष्ठ संख्या 17
[5]निराला रचनावली, भाग-5, पृष्ठ संख्या 515
[6]सरस्वती जुलाई 1923, पृष्ठ संख्या 65
[7]'मतवाला' 29 सितम्बर, 1923, निराला रचनावली, पृष्ठ संख्या 498
[8]'सरस्वती' अगस्त, 1923, निराला रचनावली, पृष्ठ संख्या 498
[9]'चाबुक-2' निराला रचनावली-6, समीक्षा, पृष्ठ संख्या 495
[10]'चाबुक-2' निराला रचनावली-6, समीक्षा, पृष्ठ संख्या 495
[11]'चाबुक-2' निराला रचनावली-6, समीक्षा, पृष्ठ संख्या 102
[12]निराला रचनावली-5, पृष्ठ संख्या 492
[13]निराला रचनावली-5, पृष्ठ संख्या 508

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,44-52
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 18 अक्टूबर 2015

कर्णचरित एवं रश्मिरथी : नूतन और रमणीय काव्य

डॉ. अंशुमाला मिश्रा*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *कर्णचरित एवं रश्मिरथी : नूतन और रमणीय काव्य* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अंशुमाला मिश्रा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

भूमिका

यद्यपि इस सुन्दर एवं सरल काव्य के लिये किसी भूमिका की आवश्यकता नहीं है किन्तु फिरभी इस शोध प्रप्रत्र के अन्तर्गत इस रमणीय काव्य के दोहावलियों को प्रस्तुत किया जा रहा है एवं उसकी व्याख्या भी की जा रही है अतः यह बतादेना उचित है कि यह काव्य श्री रामधारी सिंह दिनकर द्वारा विरचित सात सर्ग में निबद्ध है। इसके अन्तर्गत दानवीर कर्ण के जीवन के उतार-चढ़ाव एवं युद्ध का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया गया है। प्रस्तुत प्रप्रत्र के अन्तर्गत प्रत्येक सर्ग से कुछ महत्वपूर्ण दोहावलियों को लिया गया है एवं उसकी व्याख्या की गयी है। प्रथम सर्ग में दिनकर लिखते हैं कि उस पवित्र अग्नि की जय हो वह अग्नि चाहे जहाँ भी जले, हमारा नमन है। हमारा नमन है, उस वीर और तेज को-

'''जय हो', जग में जहाँ भी, नमन पुनीत अनल को,/ जिस नर में भी बसे, हमारा नमन तेज को, बल को। किसी वृन्त पर खिले विपिन में, पर नमस्य है फूल,/ सुधी खोजते नहीं गुणों का आदि, शक्ति का मूल।।''[1]

आगे दिनकर जाति-पाति के विरोध को अपने छंदों के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं। वे कहते हैं कि वही ज्ञानी है जो ऊँच-नीच का भेद नहीं मानता है। असल में वही पूज्य है जिसमें दया है धर्म है और क्षत्रिय वही है जिसमें निडरता हो। उनकी दृष्टि में वहीं सबसे श्रेष्ठ और ब्राह्मण कहलाने लायक है जो त्याग कर सकता है, तप कर सकता है।

''ऊँच-नीच का भेद न माने, वही श्रेष्ठ ज्ञानी है,/ दया-धर्म जिसमें हो, सबसे वही पूज्य प्राणी है। क्षत्रिय वही, भरी हो जिसमें निर्भयता की आग,/ सबसे श्रेष्ठ वही ब्राह्मण है, हो जिसमें तप-त्याग।।''[2]

आगे दिनकर जी लिखते हैं कि तेजस्वी व्यक्ति अपना गोत्र बतलाकर सम्मान नहीं प्राप्त करते हैं, अपनी वे अपनी वीरता से सम्मान पाते हैं।

* वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, जगत तारन महिला महाविद्यालय इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

''तेजस्वी सम्मान खोजते नहीं गोत्र बतलाके/ पाते हैं जग से प्रशस्ति अपना करतब दिखलाके। हीन मूल की ओर देख जग गलत कहे या ठीक,/ वीर खींचकर ही रहते हैं इतिहासों में लीक।।''[3]

कर्ण के बारे में लिखते हुये दिनकर बताते हैं कि वह अद्‌भुत वीर व्यक्ति था यद्यपि उसकी माता कुंती थी तथापि उसने उनका दुग्ध नहीं पिया।

''जिसके पिता सूर्य थे, माता कुन्ती सती कुमारी/ उसका पालन हुई धार पर बहती हुई पिटारी। सूत-वंश में पला, चखा भी नहीं जननि का क्षीर,/ निकला कर्ण सभी युवकों में तब भी अद्भुत वीर।।''[4]

कर्ण स्वभाव से अत्यन्त भावुक एवं दानवीर व्यक्ति था, उसके विकास में स्वयंमेष उसी का हाथा था।

''तन से समरशूल, मन से भावुक, स्वभाव से दानी,/ जाति-गोत्र का नहीं, शील का, पौरूष का अभिमानी। ज्ञान-ध्यान, शस्त्रास्त्र, शास्त्र का कर सम्यक् अभ्यास,/ अपने गुण का किया कर्ण ने आप स्वयं सुविकास।।''[5]

कर्ण नगर से दूर पल-बढ़ कर बड़ा हुआ था, उसने कठिन साधना की थी, वह एक कर्मठ व्यक्ति था।

''अलग नगर के कोलाहल से, अलग पुरी-पुरजन से,/ कठिन साधना में उद्योगी लगा हुआ तन-मन से। निज समाधि में निरत, सदा निज कर्मठता में चूर,/ वन्य कुसुम-सा खिला कर्ण जग की आंखों से दूर।।''[6]

कवि लिखता है कि अच्छे पुष्प सिर्फ माली की सेवा से नहीं फलते-फूलते अपितु वे वनों में भी कर्ण के समान पुष्पित होते हैं।

''नहीं फूलते कुसुम मात्र राजाओं के उपवन में/ अमित वार खिलते वे पुर से दूर कुञ्ज-कानन में। समझे कौन रहस्य? प्रकृति का बड़ा अनोखा हाल,/ गुदड़ी में रखती चुन-चुन कर बड़े कीमती लाल।।''[7]

निम्नांकित छंद में भी कर्ण के ही गुणों का बखान किया गया है। कर्ण में युवावस्था आते पुरूषार्थी होने के सारे गुण प्रस्फुटित हुये थे।

''जलद-पटल में छिपा, किन्तु, रवि कबतक रह सकता है?/ युग की अवहेलना शूरमा कबतक सह सकता है?। पाकर समय एक दिन आखिर उठी जवानी जाग,/ फूट पड़ी सबके समक्ष पौरूष की पहली आग।।''[8]

नीचे के छंद में कवि कहता है कि जब रंगभूमि में अर्जुन एवं कर्ण आमने-सामने आये तब कर्ण कहता है कि हे अर्जुन! तूँ तालियाँ पीटकर क्या अपना गौरव बढ़ा रहा है, मेरे शर अभी तेरा सारा यश यहीं मिट्टी में मिला देंगे-

''रंग-भूमि में अर्जुन था जब समाँ अनोखा बाँधे,/ बढ़ा भीड़-भीतर से सहसा कर्ण शरासन साधे। कहता हुआ, तालियों से क्या रहा गर्व में फूल?/ अर्जुन! तेरा सुयश अभी क्षण में होता है धूल।।''[9]

अर्जुन आखिर तूने ऐसा कौन-सा कार्य कर दिया है जो मैं नहीं कर सकता, अपने सुयश पे इतना भी मत गर्व कर-

''तुने जो-जो किया, उसे मैं भी दिखला सकता हूँ,/ चाहे तो कुछ नयी कलाएँ भी सिखला सकता हूँ। आँख खोलकर देख, कर्ण के हाथों का व्यापार,/ फूले सस्ता सुयश प्राप्त कर, उस नर को धिक्कार।।''[10]

आगे के छंद में कवि ने वर्णन किया है कि कर्ण युद्ध के लिये अर्जुन को ललकारता है-

''द्वन्द्व युद्ध के लिये पार्थ को फिर उसने ललकारा/ अर्जुन को चुप ही रहने का गुरू ने किया इशारा। कृपाचार्य ने कहा-सुनो हे वीर युवक अनजान,/ भरत-वंश-अवतंस पाण्डु की अर्जुन है सन्तान।।''[11]

कर्ण के ललकारने पर कृपाचार्य कर्ण से उसकी जाति पूछने लगते हैं-

''क्षत्रिय है, यह राजपूत्र है, यों ही नहीं लड़ेगा,/ जिस-तिस से हाथापाई में कैसे कूद पड़ेगा?। अर्जुन से लड़ना हो तो मत गहो सभा में मौन/ नाम-धाम कुछ कहो, बताओ कि तुम जाति हो कौन?।।''[12]

जाति के संदर्भ में पूछे जाने वाले प्रश्नों को सुनकर कर्ण का हृदय क्षुब्ध हो जाता है, वह अपनी भुजाओं को ही अपनी जाति बताता है-

''जाति! हाय ही जाति! कर्ण का हृदय क्षोभ से डोला/ कुपित सूर्य की ओर देख वह वीर क्रोध से बोल-। जाति-जाति रटते, जिनकी पूँजी केवल पाषण्ड,/ मैं क्या जानूँ जाति? जाति हैं ये मेरे भुजदण्ड।।''[13]

आगे के छंद में कर्ण स्वयं को सूतपुत्र बताता है-

''ऊपर सिर पर कनक-छत्र, भीतर काले-के-काले,/ शरमाते हैं नहीं जगत् में जाति पूछनेवाले। सूतपुत्र हूँ मैं, लेकिन, थे पिता पार्थ के कौन?/ साहस हो तो कहा, ग्लानि से रह जाओ मत मौन।।''[14]

अगला छंद रश्मिरथी के द्वितीय सर्ग से लिया गया है। प्रथम सर्ग के अन्तिम छंद में युद्ध का अवसान दिन के व्यतीत होने पर दिखाया गया है। अतः निम्नांकित छंद में युद्धभूमि के आस-पास दृष्टिगत होने वाले स्थल की चर्चा की गयी है-

''शीतल, विरल एक कानन शोभित अधित्यका के ऊपर,/ कहीं उत्स-प्रस्रवण चमकते, झरते कहीं शुभ्र निर्झर। जहाँ भूमि समतल, सुन्दर है, नहीं दीखते हैं पाहन,/ हरियाली के बीच खड़ा है, विस्तृत एक उटज पावन।।''[15]

आस-पास का क्षेत्र बड़ा ही मनोहारी है-

''आस-पास कुछ कटे हुये पीले धनखेत सुहाते हैं,/ शशक, मूस, गिलहरी, कबूतर धूम-धूम कण खाते हैं। कुछ तन्द्रिल, अलसित बैठे हैं, कुछ करते शिशु का लेहन,/ कुछ खाते शाकल्य, दीखते बड़े तुष्ट सारे गोधन।।''[16]

हवायें अनुमान तक पहुँचा रही हैं, ऐसा लग रहा है जैसे भीनी महक प्राणों में मादकता पहुँचा रही है-

''हवन-अग्नि बुझ चुकी, गंध से वायु, अभी, पर, माती है,/ भीनी-भीनी महक प्राण में मादकता पहुँचाती है। धूप-धूम-चर्चित लगते हैं तरू के श्याम छदन कैसे?/ झपक रहे हों शिशु के अलसित कजरारे लोचन जैसे।।''[17]

निम्नांकित छंद में बैठे हुये मृगों एवं बिलों से बाहर इधर-उधर घूम रहे जीवों का वर्णन है-

''बैठे हुये सुखद आतप में मृग रोमन्थन करते हैं,/ वन के जीव विवर से बाहर हो विश्रब्ध विचरते हैं। सूख रहे चीवर, रसाल को नन्हीं झुकी टहनियों पर,/ नीचे बिखरे हुये पड़े हैं इंगुद से चिकने पत्थर।।''[18]

कुश, पलाश इत्यादि तप में एवं धनुष इत्यादि युद्ध में काम आने वाले सामान हैं निम्नांकित छंद में विरोधाभास की स्थिति को दर्शाया गया है-

''अजिन, दर्भ, पालाश, कमण्डलु-एक ओर तप के साधन,/ एक ओर हैं टँगे धनुष, तूणीर, तीर, बरछे भीषण। चमक रहा तृण-कुटी-द्वार पर एक परशु आभाशाली/ लौह-दण्ड पर जड़ित पड़ा हो, मानो अर्ध अंशुमाली।।''[19]

''श्रद्धा बढ़ती अजिन-दर्भ पर, परशु देख मन डरता है,/ युद्ध-शिविर या तपोभूमि यह, समझ नहीं कुछ पड़ता है। हवन-कुण्ड जिसका यह, उसके ही क्या हैं ये धनुष-कुठार?/ जिस मुनि की यह स्रुवा, उसी की कैसे हो सकती तलवार?।।''[20]

''आयी है वीरता, तपोवन में क्या पुण्य कमाने को?/ या सन्यास साधना में है दैहिक शक्ति जगाने को?। मन ने तन का सिद्ध-यंत्र अथवा शस्त्रों में पाया है?/ या कि धीर कोई योगी से युक्ति सीखने आया है?।।''[21]

''परशु और तप, ये दोनों वीरों के ही होते श्रृंगार/ क्लीव न तो तप ही करता है, न तो उठा सकता तलवार। तप से मनुज दिव्य बनता है, षड् विकार से लड़ता है,/ तन की समर-भूमि में लेकिन, काम खड्ग ही करता है।।''[22]

निम्नांकित वर्णन कर्ण के आश्रम का है जहाँ वह गुरू के समीप ज्ञानार्जन के लिये रहता था। वह गुरू का अनन्य भक्त था-

''कर्ण मुग्ध हो भक्ति-भाव में मग्न हुआ-सा जाता है,/ कभी जटा पर हाथ फेरता, पीठ कभी सहलाता है। चढ़ें नहीं चींटियाँ बदन पर, पड़े नहीं तृण-पात कहीं,/ कर्ण सजग है, उचट जाय गुरुवर की कच्ची नींद नहीं।।''[23]

नीचे के छंद में कर्ण के गुरू के व्यक्तित्व का वर्णन किया गया है-

''वृद्ध देह, तप से कृश काया, उसपर आयुध-संचालन,/ हाय!, पड़ा श्रम-श्रार देव पर असमय यह मेरे कारण। किन्तु, वृद्ध होने पर भी अंगों में है क्षमता कितनी,/ और रात-दिन मुझपर दिखलाते रहते ममता कितनी।।''[24]

निम्नांकित छंद में ज्ञानी ब्राह्मण की विवशता तो देखिये-

''ब्राह्मण का है धर्म त्याग, पर, क्या बालक भी त्यागी हों?/ जन्म साथ, शिलोञ्छवृत्ति के ही क्या वे अनुरागी हों?/ क्या विचित्र रचना समाज की, गिरा ज्ञान ब्राह्मण-घर में/ मोती बरसा वैश्म-वेश्म में, पड़ा खड्ग क्षत्रिय-कर में।।''[25]

''खड्ग बड़ा उद्धत होता है, उद्धत होते हैं, राजे,/ इसलिये तो सदा बजाते रहते वे रण के बाजे। और करे ज्ञानी ब्राह्मण क्या?, असि-विहीन मन डरता है,/ राजा देता मान, भूप का वह भी आदर करता है।।''[26]

आगे के छंद में युद्ध एवं उससे प्राप्त होने वाले राजाओं के राज्य जनधन एवं उनके द्वारा लूटी हुई राज्य सीमाओं की चर्चा है-

''सुनता कौन यहाँ ब्राह्मण की? करते सब अपने मन की,/ डुबो रही शोणित में भू को भूपों की लिप्सा रण की। औ' रण भी किसलिए? नहीं जग से दुःख-दैन्य भगाने को,/ परशोषक, पथ-भ्रान्त मनुज को नहीं धर्म पर लाने को।।''[27]

''रण केवल इसलिये कि राजे और सुखी हों, मानी हों,/ और प्रजायें मिलें उन्हें, वे और अधिक अभिमानी हों। रण केवल इसलिये के वे कल्पित अभाव से छूट सकें,/ बढ़े राज्य की सीमा, जिससे अधिक जनों को लूट सकें।।''[28]

आगे के छंद में कर्ण की विवशताओं एवं परेशानियों का वर्णन किया गया है।

''रण केवल इसलिए कि सत्ता बढ़े, नहीं पत्ता डोले,/ भूपों के विपरीत न कोई कहीं कभी कुछ भी बोले। ज्यों-ज्यों मिलती विजय, अहं नरपति का बढ़ता जाता है,/ और जोर से वह समाज से सिर पर चढ़ता जाता है।।''[29]

''हाय, कार्ण, तू क्यों जन्मा था? जन्मा तो क्यों वीर हुआ?/ कवच और कुण्डल-भूषित भी तेरा अधम शरीर हुआ। धँस जाये वह देश अतल में, गुण की जहाँ नहीं पहचान/ जाति-गोत्र के बल से ही आदर पाते हैं जहाँ सुजान।।''[30]

रश्मिरथी के तृतीय सर्ग के निम्नांकित छंद में पाण्डवों के अज्ञातवास के समाप्त होने के बाद के उत्साह की चर्चा की गई है-

''नहीं पूछता है कोई, तुम व्रती, वीर या दानी हो?/ सभी पूछते मात्र यही, तुम किस कुल के अभिमानी हो?/ मगर, मनुज क्या करे? जन्म लेना तो उसके हाथ नहीं,/ चुनना जाति और कुल अपने बस की तो है बात नहीं।।''[31]

''हो गया पूर्ण अज्ञात वास,/ पाण्डव लौटे वन से साहस,/ पावक में कनक-सदृश तप कर,/ वीरत्व लिये कुछ और प्रखर,/ नस-नस में तेज-प्रवाह लिये,/ कुछ और नया उत्साह लिये।''[32]

''मुख से न कभी उफ कहते हैं,/ संकट का चरण न गहते हैं,/ जो आ पड़ता सब सहते हैं,/ उद्योग-निरत नित रहते हैं,/ शूलों का मूल नसाने को,/ बढ़ खुद विपत्ति पर छाने को।''[33]

''वसुधा का नेता कौन हुआ?/ भूखण्ड-विजेता कौन हुआ?/ अतुलित यश-क्रेता कौन हुआ?/ नव-धर्म-प्रणेता कौन हुआ/ जिसने न कभी आराम किया,/ विघ्नों में रहकर नाम किया।''[34]

''जब विघ्न सामने आते हैं,/ सोते से हमें जगाते हैं/ मन को मरोड़ते हैं पल-पल/ तन को झँझोरते हैं पल-पल/ सत्पथ की ओर लगाकर ही,/ जाते हैं हमें जगाकर ही।''[35]

''बढ़कर विपत्तियों पर छाजा,/ मेरे किशोर! मेरे ताजा!/ जीवन का रस छन जाने दे,/ तन को पत्थर बन जाने दे। तू स्वयं तेज भयकारी है,/ क्या कर सकती चिनगारी है?''।[36]

निम्नांकित छंद में भगवान श्रीकृष्ण पाण्डवों का संदेश लेकर हस्तिनापुर जाते हैं, उसी का वर्णन किया गया है-

''मैत्री की राय बताने को,/ सबको सुमार्ग पर लाने को,/ दुर्योधन को समझाने को,/ भीषण विध्वंस बचाने को,/ भगवान् हस्तिनापुर आये,/ पाण्डव का सन्देशा लाये।''[37]

''दो न्याय अगर, तो आधा दो,/ पर, इसमें भी यदि बाधा हो,/ तो दे दो केवल पाँच ग्राम,/ रक्खो अपनी धरती तमाम। हम वही खुशी से खायेंगे,/ परिजन पर असि न उठायेंगे।''[38]

किन्तु दुर्योधन पाण्डवों के प्रस्ताव से सहमत नहीं हुआ, कहा गया है कि जब मनुष्य का विनाश आता है तो उसकी बुद्धि (विवेक) मर जाती है।

''दुर्योधन वह भी दे न सका/ आशिष समाज की ले न सका/ उलटे, हरि को बांधने चला/ जो था असाध्य, साधने चला। जब नाश मनुज पर छाता है,/ पहले विवेक मर जाता है।''[39]

दुर्योधन कृष्ण को जंजीरों से बांधना चाहता है। इस पर कृष्ण क्रुद्ध होकर कहते हैं कि दुर्योधन चल तूँ मुझे बांध के दिखा-

''हरि ने भीषण ह ुंकार किया,/ अपना स्वरूप-विस्तार किया,/ डगमग-डगमग दिग्गज डोले/ भगवान् कुपित होकर बोले- /जंजीर बढ़ा कर साध मुझे,/ हाँ-हाँ, दुर्योधन! बाँध मुझे।''[40]

''बाँधने मुझे तो आया है/ जंजीर बड़ी क्या लाया है?/ यदि मुझे बाँधना चाहे मन,/ पहले तो बाँध अनन्त गगन। सूने को साध न सकता है,/ वह मुझे बाँध कब सकता है?।''[41]

''भगवान् सभा को छोड़ चले,/ करके रण-गर्जन घोर चले/ सामने कर्ण सकुचाया-सा,/ आ मिला चकित, भरमाया-सा। हरि बड़े प्रेम से कर धर कर,/ ले चढ़े उसे अपने रथ पर।''[42]

''मैंने कितना कुछ कहा नहीं?/ विषव्यंग्य कहाँ तक सहा नहीं?/ पर, दुर्योधन मतवाला है,/ कुछ नहीं समझनेवाला है। चाहिये उसे बस रण केवल/ सारी धरती कि मरण केवल।''[43]

''अच्छा, अब चला, प्रणाम आर्य!/ हों सिद्ध समर के शीघ्र कार्य। रण में ही अब दर्शन होगा,/ शर से चरण-स्पर्शन होगा। जय हो, दिनेश नभ में विहरें। भूतल में दिव्य प्रकाश भरें।''[44]

आगे के छंद में कर्ण की प्रशंसा करते हुये कृष्ण कहते हैं कि तुझसा अनन्य मित्र कोई नहीं है-

''रथ के राधेय उतर आया/ हरि के मन में विस्मय छाया/ बोले कि वीर! शत बार धन्य/ तुझ-सा न मित्र कोई अनन्य। तू कुरूपति का ही नहीं प्राण,/ नरता का है भूषण महान्।''[45]

अगला छंद चतुर्थ सर्ग का प्रथम छंद है, यहाँ कवि कर्ण की उदारता का वर्णन कर रहे हैं; प्रेम युक्त अति कठिन यज्ञ है इसमें सब कुछ स्वाहा करके ही यश मिलने वाला है ऐसा यश आखिर कौन लेगा

''प्रेमयज्ञ अति कठिन, कुण्ड में कौन वीर बलि देगा?/ तन, मन, धन, सर्वस्व होम कर अतुलनीय यश लेगा?/ हरि के सम्मुख भी न हार जिसकी निष्ठा ने मानी/ धन्य-धन्य राधेय! बन्धुता के अद्भुत अभिमानी।''[46]

''नरता का आदर्श तपस्या के भीतर पलता है,/ देता वही प्रकाश, आग में जो अभीत जलता है। आजीवन झेलते दाह का दंश वीर-व्रतधारी,/ हो पाते तब कहीं अमरता के पद के अधिकारी।''[47]

कवि कहता है कि दान तो जीवन के बिना, दान के बिता देना, उसी तरह है जहाँ कि मृत्यु के पूर्व मर जाना-

''यह न स्वत्व का त्याग, दान तो जीवन का झरना है,/ रखना उसको रोक मृत्यु के पहले ही मरना है। किस पर करते कृपा वृक्ष यदि अपना फल देते हैं?/ गिरने से उसको सँभाल क्यों रोक नहीं लेते हैं?''[48]

आगे के छंद में कवि ईसा एवं गांधी की कर्मवीरता एवं महानता का वर्णन कर रहे हैं-

''ईसा ने संसार-हेतु शूली पर प्राण गँवा कर,/ अन्तिम मूल्य दिया गाँधी ने तीन गोलियाँ खाकर। सुन अन्तिम ललकार मोल माँगते हुए जीवन की,/ सरमद में हँसकर उतार दी त्वचा समूचे तन की।''[49]

सुकरात के संदर्भ में देखें-

''हँसकर लिया मरण ओंठों पर, जीवन का व्रत पाला। अमर हुआ सुकरात जगत् में पीकर विष का प्याला। मरकर भी मनसूर नियति की सह पाया न ठिठोली,/ उत्तर में सौ बार चीख कर बोटी-बोटी बोली।''[50]

दान तो जीवन का धर्म है-

''दान जगत् का प्रकृत धर्म है, मनुज व्यर्थ डरता है,/ एक रोज तो हमें स्वयं सब-कुछ देना पड़ता है। बचते वही, समय पर जो सर्वस्व दान करते हैं/ ऋतु का ज्ञान नहीं जिनको, देकर भी मरते हैं।''[51]

कर्ण सूर्य पूजन के समय आये याचक की याचना कभी भी नहीं ठुकराता था-

''वीर कर्ण, विक्रमी, दान का अति अमोघ व्रतधारी/ पाल रहा था बहुत काल से एक पुण्य-प्रण भारी। रवि-पूजन के समय सामने जो याचक आता था,/ मुँहमाँगा वह दान कर्ण से अनायास पाता था।''[52]

''युग-युग जिये कर्ण, दलितों के वे दुख-दैन्य-हरण हैं,/ कल्पवृक्ष धरती के, अशरण की अप्रतिम शरण हैं। पहले ऐसा दानवीर धरती पर कब आया था?/ इतने अधिक जनों को किसने यह सुख पहुँचाया था?''[53]

''एक दिवस जब छोड़ रहे थे दिनमणि मध्य गगन को,/ कर्ण जाह्नवी-तीर खड़ा था मुद्रित किये नयन को,/ कटि तक डूबा हुआ सलिल में, किसी ध्यान में रत-सा/ अम्बुधि में आकटक निमज्जित कनक-खचित पर्वत-सा।''[54]

''हँसती थीं रश्मियाँ रजत से भरकर वारि विमल को,/ हो उठती थीं स्वयं स्वर्ण छू कवच और कुण्डल को। किरण-सुधा पी कमल मोद में भरकर दमक रहा था,/ कदली के चिकने पातों पर पारद चमक रहा था।''[55]

कर्ण सूर्यपूजा से निवृत्त होकर याचक को आवाज लगता है-

''कहा कर्ण ने, कौन उधर है? बन्धु, सामने आओ,/ मैं प्रस्तुत हो चुका, स्वस्थ हो, निज आदेश सुनाओ। अपनी पीड़ा कहो, कर्ण सबका विनीत अनुचर है,/ यह विपन्न का सखा तुम्हारी सेवा में तत्पर है।''[56]

''माँगो, माँगो दान, अन्न या वसन, धाम या धन दूँ?/ अपना छोटा राज्य याकि यह क्षणिक, क्षुद्र जीवन दूँ?/ मेघ भले लौटें उदास हो किसी रोज सागर से, याचक फिर सकते निराश पर, नहीं कर्ण के घर से।''[57]

''कहा कर्ण ने, वृथा भाग्य से आप डरे जाते हैं,/ जो है सम्मुख खड़ा, उसे पहचान नहीं पाते हैं। विधि ने था क्या लिखा भाग्य में, खूब जानता हूँ मैं, बाँहों को, पर, कहीं भाग्य से बली मानता हूँ मैं।''[58]

यह कर्ण का दुर्भाग्य ही था जो काल बनकर याचक के रूप में आ गया था-

''आ गया काल विकराल शान्ति के क्षय का,/ निर्दिष्ट लग्न धरती पर खण्ड-प्रलय का। हो चुकी पूर्ण योजना नियति की सारी,/ कल ही होगा आरम्भ समर अति भारी।।''[59]

युद्ध की चिन्ता कुन्ती को भी उद्वेलित कर रही थी

''सुध-बुध खो बैठी हुई समर-चिन्तन में,/ कुन्ती व्याकुल हो उठी सोच कुछ मन में। हे राम! नहीं क्या यह संयोग हटेगा?/ सचमुच ही, क्या कुन्ती का हृदय फटेगा?''[60]

''एक ही गोद के लाल, कोख के भाई/ सत्य ही, लड़ेंगे हो दो ओर लड़ाई?/ सत्य ही, कर्ण अनुजों के प्राण हरेगा?/ अथवा, अर्जुन के हाथों स्वयं मरेगा?''[61]

''यदि कहूँ युधिष्ठिर से यह मलिन कहानी,/ गलकर रह जायेगा वह भावुक ज्ञानी। तो चलूँ, कर्ण से ही मिल बात करूँ मैं,/ सामने उसी के अन्तर खोल धरूँ मैं।।''[62]

कुन्ती कहती है कि आखिर में किस मुँह से कर्ण से अर्जुन की प्राणों की रक्षा का वचन मांगूँ-

''लेकिन, कैसे उसके समक्ष जाऊँगी?/ किस तरह उसे अपना मुख दिखलाऊँगी?/ माँगता विकल हो वस्तु आज जो मन है,/ बीता विरुद्ध उसके समग्र जीवन है।।''[63]

कर्ण को आभास होता है कि कुन्ती कुछ याचना लेकर कर्ण के सम्मुख है, इस पर कर्ण कहता है-

''आहट पाकर जब ध्यान कर्ण ने खोला/ कुन्ती को सम्मुख देख विनत हो बोला/ पद पर अन्तर का भक्ति-भाव धरता हूँ/ राधा का सुत मैं, देवि! नमन करता हूँ।।''[64]

''हैं आप कौन? किसलिए यहाँ आयी हैं?/ मेरे निमित्त आदेश कौन लायी हैं?/ यह कुरूक्षेत्र की भूमि, युद्ध का स्थल है,/ अस्तमित हुआ चाहत विभामण्डल है।।''[65]

इस पर कुन्ती कहती है-

''राधा का सुत तू नहीं, तनय मेरा है,/ जो धर्मराज का, वही वंश तेरा है। तू नहीं सूत का पुत्र, राजवंशी है,/ अर्जुन-समान कुरूकुल का ही अंशी है।।''[66]

''पर, मैं कुमारिका थी, जब तू आया था,/ अनमोल लाल मैंने असमय पाया था। अतएव, हाय! अपने दुधमुँहे तनय से,/ भागना पड़ा मुझको समाज के भय से।।''[67]

कुन्ती अपनी विवशता कर्ण से कहती है-

''भागी थी तुझको छोड़ कभी जिस भय से,/ फिर कभी न हेरा तुझको जिस संशय से,/ उस जड़ समाज के सिर पर कदम धरूँगी/ डर चुकी बहुत, अब और न अधिक डरूँगी।।''[68]

कर्ण कहता है कि जो बात बीत गयी, अब कोई फायदा नहीं

''अपना खोया संसार न तुम पाओगी,/ राधा माँ का अधिकार न तुम पाओगी। छीनने स्वत्व उसका तो तुम आयी हो,/ पर, कभी बात यह भी मन में लायी हो?[69]

कर्ण कहता है कि वह अर्जुन को किसी भी हालात् में युद्ध में नहीं छोड़ेगा-

''मैं एक कर्ण अतएव, माँग लेता हूँ/ बदले में तुमको चार कर्ण देता हूँ। छोड़ूँगा मैं तो कभी नहीं अर्जुन को,/ तोड़ूँगा कैसे स्वयं पुरातन प्रण को?[70]

''पर, अन्य पाण्डवों पर मैं कृपा करूँगा,/ पाकर भी उनका जीवन नहीं हरूँगा। अब जाओ हर्षित-हृदय सोच यह मन में/ पालूँगा जो कुछ कहा, उसे मैं रण में।।''[71]

कुन्ती कहती है, मैं आज छः पुत्रों की माता बनने के उद्देश्य से तेरे पास आई हूँ-

''कुन्ती बोली, रे हठी, दिया क्या तू ने?/ निज को लेकर ले नहीं लिया क्या तू ने?/ बनने आयी थी छह पुत्रों की माता/ रह गया वाम का, पर, वाम ही विधाता।।''[72]

कर्ण कुन्ती के चरण छूकर मौन हो जाता है, और कुन्ती विवश होकर वापस लौट आती है-

''हो रहा मौन राधेय चरण को छूकर,/ दो बिन्दु अश्रु के गिरे दृगों से चूकर। बेटे का मस्तक सूँघ, बड़े ही दुख से,/ कुन्ती लौटी कुछ कहे बिना ही मुख से।।''[73]

अगला छंद षष्ठ सर्ग से है इसके अन्तर्गत कवि मनुष्यता एवं पशुता पर विचार कर रहे हैं-

''इस विस्मय का क्या समाधान?/ रह-रह कर यह क्या होता है?/ जो है अग्रणी वही सबसे/ आगे बढ़ धीरज खोता है। फिर उसकी क्रोधाकुल पुकार/ सबको बेचैन बनाती है,/ नीचे कर क्षीण मनुजता को/ ऊपर पशुत्व को लाती है।।''[74]

दुर्योधन की कुटिलता तो देखें-

''पाण्डव यदि केवल पाँच ग्राम/ लेकर सुख से रह सकते थे,/ तो विश्व-शान्ति के लिये दुःख/ कुछ और न क्या सह सकते थे?/ सुन कुटिल वचन दुर्योधन का/ केशव न क्यों यह कहा नहीं--/ हम तो आये थे शान्ति-हेतु,/ पर, तुम चाहो जो, वही सही।।''[75]

आगे के छंद में युद्ध के दौरान कृष्ण का भीष्म पर संधान करने का वर्णन है-

''हाँ, धर्मक्षेत्र इसलिए कि बन्धन/ पर अबन्ध की जीत हुई/ कर्त्तव्यज्ञान पीछे छूटा/ आगे मानव की प्रीत हुई/ प्रेमातिरेक में केशव ने/ प्रण भूल चक्र सन्धान किया/ भीष्म ने शत्रु को बड़े प्रेम से/ अपना जीवन दान दिया।।''[76]

निम्नांकित छंद रश्मिरथी के सातवें सर्ग से लिया गया है। रात्रि बीतने को है-

''निशा बीती, गगन का रूप दमका/ किनारे पर किसी का चीर चमका। क्षितिज के पास लाली छा रही है/ अतल से कौन ऊपर आ रही है?[77]

''महाभारत मही पर चल रहा है/ भुवन का भाग्य रण में जल रहा है। मनुज ललकारता फिरता मनुज को,/ मनुज ही मारता फिरता मनुज को।।''[78]

''पुरूष की बुद्धि गौरव खो चुकी है/ सहेली सर्पिणी की हो चुकी है। न छोड़ेगी किसी अपकर्म को वह,/ निगल ही जायेगी सद्धर्म को वह।।''[79]

अर्जुन युद्धभूमि में यह नहीं समझ पाये कि युद्ध में कर्ण ने किसके लिये अपने प्राण त्याग दिये-

''समझे न हाय, कौन्तेय! कर्ण ने/ छोड़ दिये किसलिये प्राण,/ गरदन पर आकर लौट गयी/ सहसा, क्यों विजयी की कृपाण?/ लेकिन, अदृश्य ने लिखा, कर्ण ने/ वचन धर्म का पाल किया,/ खड्ग का छीन कर ग्रास, उसे/ माँ के अंचल में डाल दिया।।''[80]

''गगन में बद्ध कर दीपित नयन को,/ किये था कर्ण जब सूर्यस्थ मन को,/ लगा शर एक ग्रीवा में सँभल के,/ उड़ी ऊपर प्रभा तन से निकल के!''[81]

''गिरा मस्तक मही पर छिन्न होकर!,/ तपस्या-धाम तन से भिन्न होकर। छिटक कर जो उड़ा आलोक तन से,/ हुआ एकात्म वह मिलकर तपन से।।''[82]

कर्ण ने तो शत्रुओं को भी प्राणदान देकर दया दिखाई, प्रसन्नतापूर्वक प्राण देकर मित्रता निभाई-

''दया कर शत्रु को भी त्राण देकर/ खुशी से मित्रता पर प्राण देकर/ गया है कर्ण भू को दीन करके/ मनुज-कुल को बहुत बलहीन करके।।''[83]

रश्मिरथी काव्य रामधारी सिंह द्वारा विरचित अद्भुत काव्य है। यह पढ़ने के साथ-साथ सरलतापूर्वक समझ में आता है एवं पाठक इसे पढ़कर आनंदित होता है।

स्रोत

[1]रश्मिरथी (प्रथम सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 17
[2]रश्मिरथी (प्रथम सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 17
[3]रश्मिरथी (प्रथम सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 17

[4]रश्मिरथी (प्रथम सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 17
[5]रश्मिरथी (प्रथम सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 17-18
[6]रश्मिरथी (प्रथम सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 18
[7]रश्मिरथी (प्रथम सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 18
[8]रश्मिरथी (प्रथम सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 18
[9]रश्मिरथी (प्रथम सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 18
[10]रश्मिरथी (प्रथम सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 18
[11]रश्मिरथी (प्रथम सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 19
[12]रश्मिरथी (प्रथम सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 19
[13]रश्मिरथी (प्रथम सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 19
[14]रश्मिरथी (प्रथम सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 19
[15]रश्मिरथी (द्वितीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 25
[16]रश्मिरथी (द्वितीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 25
[17]रश्मिरथी (द्वितीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 25
[18]रश्मिरथी (द्वितीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 25
[19]रश्मिरथी (द्वितीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 25-26
[20]रश्मिरथी (द्वितीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 26
[21]रश्मिरथी (द्वितीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 26
[22]रश्मिरथी (द्वितीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 26
[23]रश्मिरथी (द्वितीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 27
[24]रश्मिरथी (द्वितीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 27
[25]रश्मिरथी (द्वितीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 27-28
[26]रश्मिरथी (द्वितीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 28
[27]रश्मिरथी (द्वितीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 28
[28]रश्मिरथी (द्वितीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 28
[29]रश्मिरथी (द्वितीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 28
[30]रश्मिरथी (द्वितीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 31
[31]रश्मिरथी (द्वितीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 31
[32]रश्मिरथी (तृतीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 38
[33]रश्मिरथी (तृतीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 38
[34]रश्मिरथी (तृतीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 39
[35]रश्मिरथी (तृतीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 39-40
[36]रश्मिरथी (तृतीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 40
[37]रश्मिरथी (तृतीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 41
[38]रश्मिरथी (तृतीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 41
[39]रश्मिरथी (तृतीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 41
[40]रश्मिरथी (तृतीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 41-42
[41]रश्मिरथी (तृतीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 43
[42]रश्मिरथी (तृतीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 44-45
[43]रश्मिरथी (तृतीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 45
[44]रश्मिरथी (तृतीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 59-60
[45]रश्मिरथी (तृतीय सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 60

[46]रश्मिरथी (चतुर्थ सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 61
[47]रश्मिरथी (चतुर्थ सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 61-62
[48]रश्मिरथी (चतुर्थ सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 62
[49]रश्मिरथी (चतुर्थ सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 63
[50]रश्मिरथी (चतुर्थ सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 63
[51]रश्मिरथी (चतुर्थ सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 63-64
[52]रश्मिरथी (चतुर्थ सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 64
[53]रश्मिरथी (चतुर्थ सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 64
[54]रश्मिरथी (चतुर्थ सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 65
[55]रश्मिरथी (चतुर्थ सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 65
[56]रश्मिरथी (चतुर्थ सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 65-66
[57]रश्मिरथी (चतुर्थ सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 66
[58]रश्मिरथी (चतुर्थ सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 67
[59]रश्मिरथी (पञ्चम सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 80
[60]रश्मिरथी (पञ्चम सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 80
[61]रश्मिरथी (पञ्चम सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 80-81
[62]रश्मिरथी (पञ्चम सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 81
[63]रश्मिरथी (पञ्चम सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 81
[64]रश्मिरथी (पञ्चम सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 83
[65]रश्मिरथी (पञ्चम सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 83
[66]रश्मिरथी (पञ्चम सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 83-84
[67]रश्मिरथी (पञ्चम सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 84
[68]रश्मिरथी (पञ्चम सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 85
[69]रश्मिरथी (पञ्चम सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 88
[70]रश्मिरथी (पञ्चम सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 89
[71]रश्मिरथी (पञ्चम सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 101
[72]रश्मिरथी (पञ्चम सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 101
[73]रश्मिरथी (पञ्चम सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 105
[74]रश्मिरथी (पष्ठ सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 107
[75]रश्मिरथी (पष्ठ सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 108
[76]रश्मिरथी (पष्ठ सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 107
[77]रश्मिरथी (सप्तम् सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 136
[78]रश्मिरथी (सप्तम् सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 137
[79]रश्मिरथी (सप्तम् सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 137
[80]रश्मिरथी (सप्तम् सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 147-148
[81]रश्मिरथी (सप्तम् सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 172-73
[82]रश्मिरथी (सप्तम् सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 173
[83]रश्मिरथी (सप्तम् सर्ग)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या 176

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,53-59
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 20 अक्टूबर 2015

खड़ी बोली कविता पर ब्रज भाषा का प्रभाव

डॉ. विभा मेहरोत्रा*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *खड़ी बोली कविता पर ब्रज भाषा का प्रभाव* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *विभा मेहरोत्रा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

शौर्यसेनी अपभ्रंश के देश में ब्रजभाषा-कविता का जन्म हुए लगभग दो हजार वर्ष व्यतीत होने को आए। इतनी लम्बी काला-वधि में इस कविता की सरसता, प्रौढ़ता व्यंजकता, संगीतमयता, उक्ति-वैचित्र्य और अलंकरण की प्रवृत्ति ने उसे सर्वजनप्रिय बना दिया है। उसके इन्हीं गुणों के कारण उत्तरी भारत के सुदूर प्रदेशों पर इसका प्रभाव पर्याप्त समय तक रहा। किसी भी जीवन्त भाषा की व्यापकता और सर्वप्रियता का इससे बढ़कर प्रमाण और क्या हो सकता है? महाप्रभु वल्लभाचार्य इसे 'पुरुषोत्तम भाषा कहते थे। डॉ0 पियर्सन ने इसे मध्यप्रदेश की आदर्श भाषा माना[1]। डॉ0 सुनीति कुमार चाटुर्ज्या के शब्दों में 'ब्रजभाषा 1200 से 1850 ई0 तक के सुदीर्घ काल में अधिकांश मात्रा में सारे उत्तरी भारत, मध्य भारत, राजपूताना और कुछ हद तक पंजाब की सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक भाषा बनी रही[2] साहित्य-प्रेमियो ने इसे 'भाषामणि' कहकर प्रतिष्ठा प्रदान की[3] और कालान्तर में यह 'ब्रजभाषा' के नाम से प्रसिद्ध हुई। समस्त उत्तरापथ में ब्रजभाषा के प्रचार प्रसार का दूसरा प्रमुख कारण था इसमें कृष्ण-कथा एवं कृष्ण-भक्ति का प्रतिपादन। सरलता, सहजता और माधुर्य गुणसम्पन्न होने के कारण हिन्दी प्रदेशों की भांति ही ब्रजभाषा अहिन्दी भाषी प्रदेशों में भी समादूत एवं व्यवहृत हुई। किसी समय पंजाब से लेकर बंगाल-असम तक इस भाषा का एकच्छत्र प्रभाव था[4] श्री राधाचरण गोस्वामी ने ब्रजभाषा के चतुर्दिक प्रचार का वर्णन इन शब्दों में किया है, ''ब्रजभाषा भाषा ललित, कलित कृष्ण की केलि। या ब्रजमण्डल में उठी, ताकी घर-घर बेलि। ह्याँ से चहुँ बिस्तरी पूरब पच्छिम देस। उत्तर-दक्षिण लौ गई, बाकी छटा असेस।।''

हिन्दी साहित्य के 'स्वर्णयुग' भक्तिकाल एवं उसके परवर्ती रीतिकाल की कवितायें प्रायः ब्रजभाषा में ही लिखी गई। आधुनिक युग के प्रथम चरण में भी ब्रजभाषा कविता का प्राधान्य था किन्तु भारतेन्दु युग के कवियों ने जब खड़ी बोली हिन्दी में कविता लिखना शुरु किया तब भी उसकी आत्मा में ब्रजभाषा विद्यमान थी। शब्द तथा भाव-योजना में ब्रजभाषा का व्यापक

* एसोसियेट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डी. बी. एस. महाविद्यालय कानपुर (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

प्रभाव था। इतना ही नहीं खड़ी बोली की कर्कशता को दूर करने के लिए छायावादी युग के प्रतिभासम्पन्न श्रेष्ठ कवियों- प्रसाद, पंत और निराला आदि ने भी अपनी भाषा में स्निग्धता एवं सरसता लाने के लिए ब्रजभाषा के शब्दों को प्रयुक्त किया।[5]

विद्वानों ने ब्रजभाषा-काव्य के इतिहास को मोटे तौर के 4 कालों में विभक्त करके उनके अन्य नाम भी दिये हैं[6]- 1. प्राक् सूर काल-निर्माण-काल-संक्रान्ति काल-आदिकाल सं0 1000-1500 वि0, 2. सूर-काल-उदयकाल-भक्तिकाल-पूर्व मध्यकाल सं0 1500-1700 वि0, 3. केशव-काल-उत्कर्ष-काल-श्रृंगारकाल-उत्तर मध्यकाल सं0 1700-1900 वि0, 4. भारतेन्दु काल-विकासकाल-यथार्थवादी काल-आधुनिक काल सं0 1900 के बाद भी।

उपुर्यक्त काल-विभाजन आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के कथनानुसार ही है। डॉ0 जगदीश बाजपेयी के ब्रजभाषा कविता के आधुनिक काल को प्रवृत्तिगत आधार पर तीन युगों में विभक्त किया है[7]- 1. प्राक् भारतेन्दु युग (सं0 1900-1925 वि0), 2. भारतेन्द्र युग (सं0 1925-1950 वि0), 3. उत्तर भारतेन्द्र युग (सं0 1950-2000 वि0)

डॉ0 बाजपेयी के उत्तर-भारतेन्दु युग के सीमा-निर्धारण से हम सहमत नहीं है क्योंकि ब्रजभाषा कविता का प्रवाह अभी भी प्रवाहमान है। सं0 2000 के बाद भी इसके कई नए आयाम स्पष्ट हुए हैं।

भक्तिकाल के कवियों ने राम-चरित का विस्तार उन के लोकरक्षक एवं मर्यादावादी रूप के द्वारा प्रस्तुत किया किन्तु कृष्ण की लीलाओं एवं उनके क्रिया-कलापों में उन के लोकरंजक, लोकरक्षक, प्रेम-प्रीति-भाव से समन्वित श्रृंगारिक रूप, असुरविनाशक एवं भक्तवत्सल रूप को कवियों ने व्यापक फलक प्रदान किया। महाभारत की परम्परानुसार वे नीति-विशारद क्षत्रिय राजा के रूप में भी अंकित किये गये और ब्रज प्रदेश में स्थित कृष्ण-भक्ति सम्प्रदायों-निम्बार्क, वल्लभ, चैतन्य, राधावल्लभ, हरिदासी आदि की परम्परानुसार उनका दार्शनिक एवं व्यावहारिक रूप (साधनापक्ष के लिए उपयुक्त) भी प्रायः ब्रजभाषा के माध्यम से ही जन-मानस को सुलभ हुआ। इसी के परिणाम स्वरूप गीत-संगीत तथा राग-रागनियों के सम्पुष्ट ब्रजभाषा भक्तों में और भी अधिक समाहत हुई। अन्य क्षेत्रों में कवियों के लिए ब्रजभाषा में कुशलता से कविता लिखना मान-सम्मान का प्रश्न बन गया। उदाहरण के लिए अवधी में लिखित 'रामचरितमानस' तुलसीदास का कीर्ति स्तम्भ भले ही हो किन्तु उसकी अधिकांश रचनायें ब्रजभाषा में ही मिलती हैं। वस्तुतः उस युग में ब्रजभाषा में काव्य लिखना अनिवार्य हो गया था क्योंकि व्यक्ति की साहित्यिकता इसी से प्रमाणित होती थी।

ब्रजभाषा के प्रणेता रीतिकाल के कवियों ने कहीं तो कृष्ण को उपास्य रूप में प्रस्तुत किया और कहीं उन्हें प्रेमी नायक बनाकर 'राधिका कन्हाई सुमिरन के बहाने' अपने जले दिल के फफोले फोड़े हैं। कहीं-कहीं भावुक भक्त कवि जीवन की सन्ध्या बेला में पश्चाताप की सरिता में निमज्जित होकर कहता है, 'भारी गरे पावर नगारे दै गरे ते बांधि/ राधा-वर विरद के वारिधि में बोरतो।' (देव)

महाकवि देव ने भक्ति और श्रृंगार की धाराओं को दूध-मिश्री की भांति घुला-मिलाकर प्रस्तुत किया, 'बानी को सार बखान्यो सिंगार,/ सिंगार को सार किसोर किसारी'

स्वच्छन्द प्रेम के कवियों-घनानन्द, आलम आदि ने भी राधाकृष्ण के माध्यम से भक्ति और श्रृंगार की पयस्विनी बहाई।

आधुनिक युग के प्रथम चरण की ब्रजभाषा कविता में यद्यपि रीतिकालीन परम्परा के अवशेष दिखाई देते हैं फिर भी काव्यादर्श में एक नया चिन्तन उभरने लगा। भारतेन्दु युग की कविता में सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना, बौद्धिकता और राष्ट्रीयता का स्वर मुखरित होने लगा। एक ओर तो वे राधा-कृष्ण के प्रति भक्ति-भाव प्रदर्शित करते हैं तो दूसरी ओर समाज के ढोंगियों, पाखंडियों, पंडे-पुजारियों की खिल्ली उड़ाते हैं। वे सामाजिक और राजनीतिक जनजीवन के मध्य आर्थिक विषमता की खाई का कच्चा चिठ्ठा खोलने में भी नहीं हिचकते। इस प्रकार उनका दृष्टिकोण प्रगतिशील एवं यथार्थवादी है। डॉ0 सुधीन्द्र के शब्दों में 'हिन्दी कविता में भारतेन्दु ने सर्व प्रथम समाज के वक्षस्थल की धड़कन को सुनाया और आर्थिक जीवन में मंहगी और अकाल, टैक्स और धन का विदेश-प्रवाह, धार्मिक क्षेत्र में बहुदेव पूजा और मत-मतांतरों के झगड़े, सामाजिक क्षेत्र में जाति-पांति के टंटे और खान पान के पचड़े और बाल-विवाह, नैतिक क्षेत्र में पारस्परिक कलह और विरोध, उद्यमहीनता और आलस्य, भाषा-भूषा और भेष की विस्मृति तथा राजनीतिक क्षेत्र में पराधीनता और दासता, जीवन के ये भिन्न-भिन्न स्वर उनकी वेणु के प्रसूत होने लगे थे।''[8] इसमें कोई संदेह नहीं कि भारतेन्दु मुख्यतः ब्रजभाषा के कवि थे। स्व0 जयशंकर 'प्रसाद'

ने भारतेन्दु को हिन्दी का प्रथम यथार्थवादी कवि माना है'[7] क्योंकि उन्होंने जीवन और उसकी समस्याओं को वास्तविक रूप में देखा-परखा।

विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से आधुनिक युग की ब्रजभाषा कविता में परिवर्तन के कई आयाम दिखाई पड़ते हैं जो भारतेन्दु युग से प्रारम्भ होकर अद्यतन कविता में प्रयुक्त रूपों में मिलते हैं। आधुनिक युग बोध एवं जन-जीवन की सामायिक परिस्थितियों को निकट से देखने पर काव्य के आलम्बन बदलने शुरू हुए। अब कवियों ने दैनिक जीवन के साधारण से साधारण विषय लिए जैसे- रेल, मोटर, कार, वकील, पटवारी, आलोचक, चाय, पावर हाउस, कम्पोजीटर, कलियुगी साधु, राशन कार्ड, रोटी आधुनिक कवि, हल, फुटबाल, नारी-जागरण आदि :

रेलः रेल की सवारी ते सवारी सब हारि परीं,/ मारी परी सखी सब इन्द्र के विमान की। आंधी की है दादी और नानी है भभूरे की ये,/ भूआ कलांकद की, बहिन बड़े भान की। गाड़ी, रथ, घोड़ा, ऊँट, डांक ऊपरी है झूठ,/ 'ग्वाल' कवि कहै जे है मौसी हनुमान की। पानी की पियासी औ ज्वाला की सरीखनी है,/ धन कर है दाता जे है माया भगवान की। (ग्वाल)

मोटरः अति प्रबला अति चंचला सदा नेह आधार। चक्रपाणि अनुगामिनी, रमा कि मोटर कार।। (भगवानदीन 'दीन')

पटवारी : खेती बारी पट्ट सब कुछ भये करि देत। भहै जग में ख्यात ये पटवारी यहि हेत। (अबोध मिश्रा)

आलोचक : आलोचक कविता करै तो यह समुझी भूल। माली में है कब लगे, कहु गुलाब के फूल। (किशोरीदास बाजपेयी)

चाय : गरमी में सीतल सुखद, गरमसीत रितु मांह। सो स्यामा रसदायिनी, घनि लिपटन की चाह। (किशोरीदास बाजपेयी)

पावर हाउसः एक जोति जग जगमगै जीव-जीव के जीय। बिजुरी-बिजुरी घर निकसि ज्यौ जारति पुर-दीय। (दुलारेलाल भार्गव)

कम्पोजीटर : पाण्डु बनाये पाण्डुलिपि पेट गड़ाये दीठ। जोरहिं अक्षर कौन ये नित्य नवाये पीठ। (रामेश्वर 'करुण')

कलियुगी साधुः धन को खटका नहिं रहै, रहै न रिन की चोट। देखि परै घमघूसरे याही कारन मोट। (रामेश्वर 'करुण')

राशन कार्डः आज अन्नदाता तुम्हीं, तुम्हीं हमारे 'लार्ड'। बारम्बार प्रणाम है तुम्हें राशनिंग कार्ड। (ह्र-ीकेश चतुर्वेदी)

नारी जागरणः दीनता, अधीनता, मलीनता की छोड़ी भाव,/ रीति प्रीति-नीति परतीति परिचारिका। प्रेम वाटिका में बैठि कब लौ रहीगी मीन,/ कबलौ पढ़ाऔ पींजरान सुक सारिका। कोऊ प्रौढा-मुग्ध-रूपगर्विता बतावै कवि,/ कोऊ परकीया कोऊ कहै अभिसारिका। आदि सक्ति देस की समाज की धुरी हो देवि,/ त्यागी, भ्रम मोह जागी नाहि दूर द्वारिका। (तोताराम 'पंकज')

आधुनिक ब्रजभाषा कविता सम-सामयिकता के कितनी अधिक निकट है, इसका नमूना चन्द्रमा पर रूस के भेजे गये राकेट का रोचक वर्णन। ''सिंगारी कवि बंधु चन्द्र की यात्रा कीजै। ससि बदनिनि संग सुधा सोमरस सुख सों पीजै। कनि रूसहु बिनु रोक, रूस के राकेट बैठी। बेगि सवेग संदेर कछुक छान मंह तंह पैठी।''[10]

प्राचीन ब्रजभाषा काव्य में प्रायः जीवन के प्रति विरक्ति और उदासीनता की भावना मिलती थी, किन्तु आधुनिक युग में इसमें परिवर्तन हुआ है। आज के कवियों ने समाज तथा देश की विविध समस्याओं (राष्ट्रीय, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन से सम्बन्धित) को यथार्थवादी दृष्टि प्रदान की है और इसी कारण वे अलौलिक एवं आध्यात्मिकता की अपेक्षा अधिक सत्य और सुग्राह प्रतीत होने लगी है।[11] इस प्रकार वस्तुतः वर्तमान ब्रजभाषा में जीवन और जगत को खुली आँख से देखने की प्रवृत्ति पैदा हुई जिसके फलस्वरूप प्राचीनकाल से चली आ रही साहित्यिक परम्पराओं, जैसे- ऋतु वर्णन, समस्या, पूर्ति, भ्रमरगीत प्रसंग तथा नायिका भेद आदि को नवीन रूप प्रदान किया गया।

ब्रजभाषा में हास्य-व्यंग्य की प्राचीन परम्परा बड़ी समृद्ध है फिर भी उसका मौलिक एवं शिष्ट रूप आधुनिक युग में दिखाई देता है। हास्य कविताओं के प्रथम दौर में भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, राधा चरण गोस्वामी तथा बालमुकुन्द गुप्त आदि में पहेलियों, मुकरियों, गालियों, स्यापा तथा लटके आदि के माध्यम से सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक तथा साहित्यिक परिवेश को व्यापक रूप में ग्रहण किया और उपहास, व्यंग्य, परिहास, आभास-काव्य (पेरोडी), वचन वैदग्ध्य (विट), विरूप (कैरीकेचर) विकृति (सेटायर) आदि को अपनाकर पुलिस, अंग्रेजी भाषा, सरकारी अमला, ग्रेजुएट, टैक्स आदि सामयिक विषयों को अपना माध्यम बनाया।[12] हास्य व्यंग्य कविताओं के दूसरे दौर में हास्य-रस के आलम्बन बहुत कुछ बदल गये और अब सरकारी योजनायें, मूंछ, पेशेवर नेता, कालेज के फैशनेबुल विद्यार्थी, छायावादी कवि, पत्नी, साला, वृद्ध-विवाह, कंजूस, सेठ चुनाव आदि को लेकर हास्य की सृष्टि की जाने लगी। इसके लिए उर्दू-अंग्रेजी के शब्द स्वतन्त्रतापूर्वक प्रयुक्त किये गये। कहीं-कहीं तो उनके बिगड़े हुए रूप के प्रयोग द्वारा हास्य की बड़ी सुंदर योजना प्रस्तुत की गई है, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक कुरीतियों को व्यंग्य का माध्यम बनाते हुए इस काल के हास्य रस सम्बन्धी काव्य में बड़ी सुन्दर रस-व्यंजना की गई है।[13] इस दौर के कवियों

में नाथूराम शर्मा 'शंकर' वचनेश, अनूप शर्मा, उमाशंकर, हृषीकेश चर्तुवेदी, हरिशंकर शर्मा, ब्रजकिशोर चतुर्वेदी 'चुकन्दर' सुभाषी तथा तोताराम पंकज आदि प्रमुख हैं।

द्विवेदी युग के पर्याप्त पहले ही ब्रजभाषा में उपेक्षितों के उद्धार के लिए नवीन चिन्तन की कवितायें लिखी जाने लगी थीं। इन रचनाओं के प्रथम चरण में ग्वाल ने 'कुबिजा-टक' नवनीत चतुर्वेदी ने 'कुब्जापसीसी' उजियारे लाल 'ललितेश' ने 'दशानन दिग्विजय' की रचना की। दूसरे चरण में वियोगी हरि ने 'मन्दिर प्रवेश' वचनेश ने 'शबरी' शिवरत्न शुक्ल 'सिरस' ने भरत भक्ति और हरि दयालु सिंह ने 'रावण' और 'दैत्यवंश' नामक काव्य-ग्रन्थ लिखे। तीसरे चरण में बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने उर्मिला नामक खड़ी बोली के काव्य के प्रथम सर्ग में ब्रजभाषा के 704 दोहों में उसके विरह का मार्मिक वर्णन किया। रामनारायण अग्रवाल ने 'कूबरी विनोद' की रचना की। इस प्रकार हम निःसंकोच कह सकते हैं कि रस-व्यंजना का जो कीर्तिमान ब्रजभाषा ने स्थापित किया, वह आज भी अक्षुष्ण रूप से विद्यमान है।

ब्रजभाषा के आधुनिक युग के कवियों ने प्राचीन परम्परा के विषय चुने और उनमें समयानुकूल परिष्कार एवं परिवर्तन किया। उदाहरण के लिए सतसई परम्परा को ही ले सकते हैं। आधुनिक युग के पूर्व इस परम्परा में ज्ञान, भक्ति, नीति, श्रृंगार आदि का चरमोत्कृष्ट रूप प्रस्तुत किया गया। परिवर्तित परिस्थितियों में सामाजिक एवं राजनीतिक परिवेश की स्थिति के अनुसार भावगत मौलिकता और भाषागत नवीनता का समावेश हुआ। इसके अतिरिक्त कतिपय अन्य रचनायें भी मिलती है जिन पर 'सतसई' नाम का लेबिल नहीं है, वैसे उनमें विभिन्न विषयों के दोहे उपलब्ध हैं, जैसे- दुलारे दोहावली, सुधा सरोवर, तरंगिणी और दिव्य दोहावली आदि।

ब्रज के आधुनिक कवियों ने ब्रजभाषा में लिखे प्राचीन दोहों के भाव या उन्हीं पंक्तियों को पल्लवित और विकसित किया है। प्रतिभा-सम्पन्न कवियों ने इस दिशा में मार्मिकता एवं मौलिकता प्रदर्शित की है। उदाहरण के लिए बिहारी का एक दोहा है, 'इन दुखिया अंखियान को सुख सिरज्योई नाहि। देखै बने न देखते, अनदेखे अकुलाहि।'

पं0 अम्बिकादास व्यास ने 'बिहारी बिहार' में इस दोहे को निम्नलिखित कुंडलियों में पल्लिवित किया है, ''इन दुखिया अंखियान को सुख सिरज्जौई नाहिं। देखै बले न देखते अनदेखे अकुलाहि।। अनदेखे अकुलाहि हाय आंसू बरसावत। नेह भरेहू रूखे है अति जिय तरसावत। सुकवि लखतहू पलक कलप सम सरिस सुहाइन। प्रान जाइ जो तोउ दोउ युग को दुख जाइ न।''

इसी प्रकार बिहारी के ही एक अन्य दोहे पर भारतेन्दु रचित कुण्डलियाँ भी दर्शनीय है, ''मेरी भव बाधा हरो राधा नागरि सोई। जा तन की झाई परे स्याम हरित दुति होइ। स्याम हरित द्रुति होइ परे जा तन की झांई। पांय पलोटत लाल लखत सांवरे कन्हाई। श्री हरिश्चन्द्र वियोत पीत पट मिलि द्रुति टेरी। तिन हरि जा रंग रंगे हरो सोइ बाधा मेरी।।''

इसी दोहे पर 'कृष्ण' कवि का सवैया भी देखिये इसमें बिहारी के भाव की रक्षा करते हुए उसी का का विकास किया गया है, ''जाकी प्रभा अवलोकत ही तिहुँ लोक की सुन्दरता गई बारी। 'कृष्ण' कहै सरसीरूह नैनी कौ नाम महा मुद्र मंगलकारी। जा तन के झलके-झलके हरित द्रुति स्याम की होति निहारी/ श्री वृषभानु कुमारि कृपा कै सु राधा हरौ भव बाधा''(हमारी)[14]

भक्तिकालीन भ्रमरगीत-परम्परा श्रीमद्भागवत से प्रभावित है, किन्तु आधुनिक युग के ब्रजभाषा के कवियों ने सम-सामयिक परिस्थितियों का समावेश करके भावुकता और श्रृंगारकिता के स्थान पर देश-दुर्दशा, पराधीनता, अशिक्षा, दरिद्रता आदि समस्याओं को अपनाया। भक्तिकाल में कृष्ण विरह व्यथिता गोपियां आँसू बहाकर कृष्ण की स्मृति में केवल रोकर नारी-सुलभ वेदना का परिचय देती थी किन्तु आधुनिक कथा में वर्णित गोपी में आत्मविश्वास और नारी की स्वतन्त्र सत्ता के दर्शन होते हैं। रत्नाकर ने 'उद्धव शतक' में प्राचीन परिपाटी का अनुगमन कर उसे आधुनिक चिन्तन का जामा पहनाया तो सत्यनारायण कविरत्न ने 'भ्रमरदूत' में पराधीन भारतमाता (यशोदा) की दुर्दशा तथा ब्रज (भारत) की करुण दशा का चित्रण किया है जिसमें छूतछात, अशिक्षा, अकाल, अतिवृष्टि आर्थिक शोषण आदि समस्याओं का समावेश बड़ी कुशलता से किया गया है, ''या बिनु ग्वालन हित की को बात सुनाई। अरु स्वतन्त्रता, समता, सहभ्रातृता सिखावै। जदपि सफल विधि ये सहत दारुण अत्याचार। पै न कछु मुख सों कत कोरे बने गँवार।''

डॉ0 श्यामसुन्दर लाल दीक्षित रचित 'श्याम-सन्देश' में भी कृष्ण-कथा को नया परिवेश प्रदान किया गया है इसमें कंस वध के पश्चात् जनता द्वारा मनाये गये मुक्ति पर्व में कृष्ण नंगे पैरों जुलूस में भाग लेते हैं। ''पाँय पयादे चले सवनि को दरसनि

दरन्हें। पुष्प, अरघ, आसीरवाद सबहीं सौं लीन्हें। अखिल लोक सुख-पुंजप्रभु दीनदयालु विशेष। गो, गोपी, ग्वालन सुखद, सुभ साधारण वेष मिल सबको मुक्ति।''

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ब्रजभाषा के आधुनिक कवियों ने परम्परागत प्रसंगों को युग-प्रभाव एवं जनतंत्रीय पद्धतियों के आधार पर प्रस्तुत किया है। इस प्रकार ब्रजभाषा काव्य-परम्परा अभी जक प्राणवंत एवं समासामयिक जीवन के प्रति जागरुक हैं।

लक्षण-ग्रंथ लिखने के परम्परा में भी ब्रजभाषा के आधुनिक कवि अग्रणी है। अलंकार के क्षेत्र में डॉ0 रसाल और कन्हैया-लाल पोद्दार, रस के क्षेत्र में गोकुल प्रसाद व्रज तथा हरिऔध, पिंगल के क्षेत्र में जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' तथा नायिका भेद के क्षेत्र में हरिऔध के प्रयत्न पर्याप्त प्रौढ हैं।[15]

ब्रजभाषा के आधुनिक कवियों ने अपने प्रकृति प्रेम का परिचय बड़ी ही सरस कवितायें रच करके दिया है। इनके चित्रमय वर्णनों में प्रकृति का आलम्बन, उद्दीपन, अलंकरण, उपदेशात्मकता तथा परोक्ष सत्ता के प्रति रहस्यमय संकेत का विवरण मिलता है।

आधुनिक युग में लिखित ब्रजभाषा के मौलिक और अनूदित नाटकों में कविता का प्राधान्य तो है ही, उनमें सरसता और मार्मिकता भी सर्वत्र दिखाई देती है।

भारतेन्दु ने ब्रजभाषा में लोक-काव्य लिखने की सरस परम्परा का सूत्रपात किया जिसके अंतर्गत असामयिक जीवन को प्रभावित करने वाली बातों को सुन्दर शब्दों में प्रस्तुत किया गया। भारतेन्दु, प्रताप नारायण मिश्र तथा प्रेमधन आदि ने टैक्स, अकाल, अंग्रेजी भाषा, अदालत कंजूस तथा देश की दयनीय अवधी, बनारसी तथा भोजपुरी बोली का पुट देकर उसे जीवन्त रूप प्रदान किया।

ब्रजभाषा का शब्द-सौन्दर्य, प्रवाह, सरलता और सजीवता उसके जन्मजात गुण है। 'सांकरी गली में कांकरी गढ़ने' की प्रसिद्ध उक्ति तो है ही, आधुनिक युग के प्रसिद्ध हास्य-व्यंग्यकार कवि श्री गोपालदास व्यास ने इसके विविध रूप-रस का गुणगान किया है, ''या अनुराग के रंग रंगी रसखान खरी रसखान की भाषा। या में धुरी मिसरी मधुरी यह गोपिन के अधरान की भाषा। को सरि याकी करै कवि 'व्यास', ये भाव भरे अखरान की भाषा। बोरत भक्ति निचोरत ज्ञान में, गोविन्द के गुरु-गान की भाषा।''

स्व0 पं. हृषीकेश चतुर्वेदी ने व्रजचन्द (कृष्ण) और उनकी 'ब्रजबानी' का गुणगान बड़े सरस शब्दों में प्रस्तुत किया है जिसमें 'यमक अलंकार' की छटा भी दर्शनीय है, ''मन मोहन की मोहिनी, मधुमय ब्रजबानी। नवरस भीनें 'लाल जू' यह नव-रस सानी। अलंकार सुबरन बनें, तिन-तिन पर राजै। अलंकार सुबरन घनें, इत अति छवि छाजै। छल-छन्दनि सों वे भरे, उनकर गति न्यारर। कल-छन्दिन सों यह भरी गति लागति पियारी।।''[16]

पं0 श्रीधर पाठक की रचना से भाषा की गतिशीलता का एक नया नमूना लिया जा सकता है, ''सजति, सजावति, सरसति, हरसति, प्यारी। बहुरि सराहित भाग पाय सुठि चित्तरसारी। बिहरति विविध-विलास-भरी जीवन के मद-सनि। ललकित, किलकति, पुलकति, निरखति, थिरकति, बनि। (काश्मीर सुषमा)

ब्रजभाषा की जिंदादिली, सामर्थ्य, सहजता और प्राणवत्ता के कुछ चुने हुए सुन्दर नमूने, ''गहवरि आयौ गरौ भमरि अचानक त्यौं/ प्रेम पर्‌यौ चपल चुचाय पुतरीन सौं। नेंकु कहीं बैनति, अनेक कही नैनति सौं,/ रही-सही सोऊ कहि दीन्हीं हिचकीनि सौं।'' (उद्धवशतक, रत्नाकर)

''जोम भरे अंगनि सों अमित उमंगति सों,/ हेरि नाचै हंकस नाचैं हिरकि-हिरकि कै। उझकि-उझकि नाचैं शंभु श्रृंग-देसनि पै,/ केशनि पै गंग नाचै छिरकि-छिरकि कै। ऊलि नाचै झूलि नाचैं नट सम तूलि नाचै,/ फूलि नाचै, फैलि नाचै फिरकि-फिरकि कै/ झुकि कै झपकि कै झिझकि कै झकोर दै है,/ नाचै हँ अथान थान थिरकि-थिरकि कै।'' (शिव-ताण्डव, अनूप शर्मा)

''मांगल चन्दहि बाल-गुविन्दा। कनक रजत के ललित खिलोननि,/ कर नहिं छुअत मचावत दुन्दा। बहुभातिन बहरावति जसुमति/ चूमति मंजु बदन-अरविन्दा/ विकट हठी सिसु के सनसुख कछु,/ चलत न दन्द-फन्द छल-छन्दा। थार नीर भरि, थिर

करि जजनी,/ कहति लखहु ससि, आनन्द-कन्दा। 'हृषीकेश' तेहि निरखि मुद्रित-मन,/ थिरकि-थिरकि निरतत नन्द-नन्दा।'' (हृषीकेश चतुर्वेदी)

''वेद विधि विविध विधानन सौं बेर-बेर/ टेरि-टेरि कहै जग निपट निसार है। सार है धरा पै सुखसार ध्रुव धर्म एक,/ विमल विवेक देह बहु दुखभार है। भार है अपार गुरु, कहत पुकार सवै,/ नीर की लकीर सी न मन में संभार है। मार है न प्यार जैसे बारू की दीवार-/ जग, पल में दिखाई सी सपन एक बार है।'' (स्वप्न, थानसिंह शर्मा सुभाषी)

सुभाषी जी के इस कवित्त में प्रत्येक तुकांत पंक्ति के अंतिम तीन अक्षर अगली पंक्ति के प्रारम्भिक अक्षर हैं। इनमें काव्य-चमत्कार तो है, ही अर्थवत्ता में और भी सौष्ठव आ गया है। इसी प्रकार गोविन्द गीलाभाई (संवत् 1905-1993 वि0) के भाषा-चमत्कार का एक नमूना मात्रा विहीन छंद के रूप में अवलोकनीय है, ''अजर अमर अज अकथ अगम यह,/ बरन करन सब सघन अघन हर/ भगत भजत तब तजत सहस भय,/ अभय करत मन गरम धरम घर। जनम मरन हरन सबल जन,/ करन कमन वह कमल नयन घर। अमर भरत भव अचल धरन यह,/ कर समरन मन महत लछन वर।''

इसी प्रकार का एक उदाहरण पं0 हृषीकेश चतुर्वेदी की रचना में अवलोकनीय है, ''नटवर नटखट झगरत झटपट,/ झपत न मन, झटपट पर झटकता/ अचक अरत, अकरत, पकरत कर,/ करत न डर, बरबस घट पटकत। नव-नव छल -बल रचत अनवरत,/ अटपट वचन कहत, मग मटकत,/ अटकत अबलन सनं, पनघट पर,/ डटत; करत हठ; हटत न हटकत।।''[17]

लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग तो ब्रजभाषा के कवि के लिए हस्तामलकवत् है ही, वह ध्वन्यार्थ व्यंजना से कविताओं में वर्ण्य-वस्तु का मूर्त चित्र नेत्रों के समक्ष प्रस्तु करने में भी कुशल है, 'धर कोठिन की तरकनि दरकनि मांटी सरकनि। देखहु तिनकी अर-रर-रस ऊपर से ररकनि।' (सत्यनारायण 'कविरत्न); 'चली धार धुधकारि धरा दिसि काटति काबा। सगर सुतनि के साप-ताप पै बोलति धावा।' (जगन्नाथ 'रत्नाकर')

रीतिकाल तक जो छन्द ब्रजभाषा में रूढ़ हो गये थे, उनके अतिरिक्त आधुनिक कवियों ने लोक-छंदों को भी साहित्य में स्थान दिया। उन्होंने उर्दू की गजल और रेखता की बहरों का प्रयोग किया। बंगला के लोकप्रिय छंद पयार को भी प्रयुक्त किया गया।[18] भारतेन्दु युग के कवियों ने उर्दू की बहर और हिन्दी के दोहों को मिलाकर तरजीहबन्द नाम की एक रचना लिखी।[19]

श्री उमांशकर बाजपेयी 'उमेश' ने ब्रजभाषा में मुक्त-छन्द का प्रवर्तन किया। स्वच्छन्द छंद प्रयोग की यही प्रवृत्ति रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर' रचित 'सौरभ' नामक कविता संग्रह में दिखायी देती है।

वैसे तो ब्रजभाषा कविता में शब्दालंकार और अर्थालंकार का सुन्दर समन्वयात्मक प्रयोग आधुनिक युग में भी उपलब्ध है। कतिपय आलोचनों ने पुरानी ब्रजभाषा कविता पर प्रायः यह आरोप लगाया है कि अतिशय मधुरता के कारण उसमें श्रृंगार, शान्त, करुण आदि कोमल रसों की व्यंजना तो प्रचुरता से हुई है, पर अन्य कठोर रसों का प्रयोग नहीं हुआ है। डॉ0 जगदीश बाजपेयी ने कविताओं के उदाहरण देकर यह स्पष्ट किया है कि 'वीर रस' के क्षेत्र में 'अनूप' 'ब्रजेश', 'अम्बिकेश' तथा 'सरस', भयानक के क्षेत्र में 'रत्नाकर' एवं 'हरिऔध' रौद्र के क्षेत्र में 'रसिक बिहारी' तथा 'लछिराम' अन्द्रुत के क्षेत्र में 'पूर्ण' तथा शंकर और वीभत्स रस के क्षेत्र में हरिश्चन्द्र तथा 'हरिऔध' की रचनायें विशेष मार्मिक बन पड़ी हैं।[20] वैसे श्रृंगार और शांतरस तो आज भी ब्रजभाषा कविता की आत्मा में सहज रूप से विद्यमान है।

ब्रजभाषा कविता में तो मसृणता एवं मधुरता विद्यमान थी उसने आधुनिक युग के कवियों पर भी अपना व्यापक प्रभाव डाला। डॉ0 विजयेन्द्र स्नातक का कथन है कि सूर की गोपियाँ ही 'प्रियप्रवास' में भी है। यदि सूरसागर न होता तो 'हरिऔध' का 'प्रियप्रवास' न लिखा जाता।

छायावाद के स्तम्भ जयशंकर प्रसाद की रचनाओं का प्रारम्भिक रूप ब्रजभाषा में से लिया गया। वे ब्रजभाषा के सहज माधुर्य और लालित्य से प्रभावित थे। श्री सुमित्रानंदन पंत ने 'पल्लव' की भूमिका में स्वीकार किया कि आधुनिक कविता में ब्रजभाषा का प्रभाव हमसे छोड़ते नहीं बनता। निराला और महादेवी वर्मा की कविताओं में जो रससिक्त प्रवाह है उस पर ब्रजभाषा की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। भारतेन्दु, रत्नाकर, रसाल, हरदयाल सिंह, प्रसाद, नवीन आदि कवियों ने खड़ी बोली हिन्दी का प्रयोग भले ही किया, किन्तु वे मूलतः ब्रजभाषा के ही कवि थे। डॉ0 स्नातक का कहना है कि आज के श्रेष्ठ कवि

व्रज के प्रच्छन्न प्रभाव से स्वयं को न बचा सके, भले ही वे इसका विरोध करते रहे। वैसे खड़ी बोली कविता पर ब्रजभाषा का प्रमाण मूल रूप से कलापक्ष पर पड़ा है।

इस प्रकार ब्रजभाषा के कवियों के इस कमाल को निर्विवापद रूप से स्वीकार करना पड़ेगा कि वे शब्द-शिल्प-कौशल के द्वारा हमारे मन को लय की प्रवहमान धारा में बहाकर तन्मय कर देने में आज भी सिद्धहस्त हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

[1]*It is a form of Hindi used in literature of the classical period and is hence considered to be the dialectus precipua and may well be considered as typical of midland language.* On the Modern Indo-Aryan Veroaculars, P. 10.

[2]भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ संख्या 189

[3]हिन्दी भाषा का इतिहास- डा0 धीरेन्द्र वर्मा (षष्ठ संस्करण), पृष्ठ संख्या 64

[4]हिन्दीतर प्रदेशों के ब्रजभाषा कवि- *पंजाब;* गुरुनानक, गुरु अर्जुन देव, गुरु गोविन्द सिंह, हृदयराम, सुमेरसिंह आदि। *राजस्थान;* सुंदरदास, दादू मीरा, छीछल, महाराज जसवन्त सिंह, वृंद, सुंदरकुंवरि, नागरीदास, जोधराज, चन्द्रकला बाई, राजा रामसिंह आदि। *बिहार;* नकछेदी तिवारी 'अजान', अक्षयवट मिश्र 'विप्रचन्द्र', वंशमनि। *उड़ीसा;* विद्यापति, दशावधान ठाकुर, शेखर, गोविन्ददास, भूपतीन्द्र, नन्दीपति, कर्णश्याम आदि। *गुजरात;* (प्राचीन कवि) केशवदास, लक्ष्मीदास, कृष्णदास, विष्णुदास, दयाराम, रघुराम, केवलराम, रत्नजित आदि। (आधुनिक कवि) जेठालाल चारण, कवि रविराज, आदित्यराम, महारमण, गोविन्दगीला भाई आदि। *बंगाल;* गोविन्ददास, ज्ञानदास। *असम;* शंकरदेव, माधवदेव आदि। *महाराष्ट्र;* नामदेव, त्रिलोचन, भानुदास, शाहजी और शिवाजी के दरबारी कवि। *कश्मीर;* मनवटी, बुलबुल आदि।

[5]देखिए, आधुनिक हिन्दी कवियों के शब्द प्रयोग- डॉ0 कृष्ण 'भावुक'।

[6]विस्तृत विवरण के लिए देखिए- (क.) आधुनिक ब्रजभाषा काव्य- डॉ0 जगदीश बाजपेयी, पृष्ठ संख्या 30, (ख.) ब्रजभाषा- डा0 धीरेन्द्र वर्मा, (ग.) ब्रजभाषा और उसके साहित्य की भूमिका- डॉ0 कपिलदेव सिंह, पृष्ठ संख्या 35

[7]आधुनिक ब्रजभाषा काव्य- डॉ0 जगदीश बाजपेयी, पृष्ठ संख्या 31

[8]*हिन्दी कविता में युगान्तर,* पृष्ठ संख्या 58-60

[9]*काव्य-कला तथा अन्य निबन्ध,* पृष्ठ संख्या 119

[10]*हृषीकेश रचनावली*

[11]हिन्दी कवियों का काव्यादर्श- (सम्पादक) डॉ0 प्रेम नारायण टण्डन, पृष्ठ संख्या 122

[12]*आधुनिक बृजभाषा काव्य,* पृष्ठ संख्या 214

[13]*आधुनिक ब्रजभाषा काव्य,* पृष्ठ संख्या 215

[14]वही, पृष्ठ संख्या 222 पर उद्धृत

[15]वही, पृष्ठ संख्या 193

[16]*हृषीकेश रचनावली,* पृष्ठ संख्या 61

[17]वही, पृष्ठ संख्या 76

[18]*हिन्दी साहित्यकोश,* पृष्ठ संख्या 181

[19]भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि- डॉ0 किशोरीलाल गुप्त, पृष्ठ संख्या 306

[20]आधुनिक ब्रजभाषा-काव्य- डॉ0 जगदीश बाजपेयी, पृष्ठ संख्या 39-45 तथा 204

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) **9,60-65**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 22 अक्टूबर 2015

21वीं सदी की पुरुष कवियों की कविताओं में चित्रित स्त्री

डॉ. राधा वर्मा*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *21वीं सदी की पुरुष कवियों की कविताओं में चित्रित स्त्री* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *राधा वर्मा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

अक्सर कहा जाता है कि औरत के हक में जितनी प्रखरता के साथ औरत लिख सकती है उतना पुरुष नहीं। इक्कीसवीं सदी में प्रकाशित कविता पुस्तकों में से गुजरने के बाद यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि यह कथन सही नहीं है। यहाँ पुरुष कवियों ने पितृ-सत्तात्मक समाज के दोहरे मापदंडों, पैतृक मूल्यों, लिंग भेद की राजनीति और स्त्री उत्पीड़न के अन्तर्निहित कारणों को गहराई से पहचानते हुए यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। यहाँ इन कवियों की उन कविताओं का उल्लेख किया जा रहा है, जो गवाह है स्त्री संसार के उत्पीड़न भरी हुई दुनिया की।

कन्याओं को गर्भ में ही कत्ल किये जाने से लिंगानुपात में असंतुलन पैदा हो रहा है, जिससे समाज में असंतुलन की स्थिति पैदा होने का भय बढ़ चुका है। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की 'स्त्रीविहीन रेल का डिब्बा' कविता इस गंभीर संकट को सामने लाती है। मादा शिशु को गर्भ में ही कत्ल होते देख, उनकी संख्या में कमी होने से इन पंक्तियों में कवि ने शब्दबद्ध कर सोचने को मजबूर किया है :

> क्या स्त्रियों ने बंद कर दी है यात्राएँ ? बाप रे इतना लम्बा डब्बा और इतना मनहूस ? कहाँ गयी स्त्रियाँ ? सौंदर्य प्रतियोगिताओं में/ या विज्ञापनों में/ कोठों पर/ तन्दूरों पर/ या श्मशानों में/ कैसे पहुँचेगी यह गाड़ी सही सलामत/ स्त्री के बिना ?''[1]

मादा भ्रूण हत्या न हो, वह संसार में आ जाये, तो बात आती है उसके शील-रक्षण की। ज्ञानेन्द्रपति ने 'भिनसार' कविता -पुस्तक में 'बनानी बैनर्जी' कविता में इस विषय को रेखांकित किया है। महानगर में कामकाजी लड़की किस तरह से तनावों और दबावों के बीच जी रही है, इसे बखूबी प्रस्तुत किया है। ऑफिस में काम करने वाली मिस बैनर्जी नकली हँसी हँसते-हँसते थक गई है, जीवन के जंगल में मुस्कान ढूँढ रही है। ट्रेन, बस, ट्रॉम में सफर करते समय वह इज्जत लुटने के डर से भयभीत रहती है। इस डर के कारण वह रात को अच्छी तरह सो भी नहीं पाती। उसे रात भर दुःस्वप्न आते रहते हैं।

* सहायक आचार्य (हिन्दी), राजकीय संस्कृत महाविद्यालय [फागली] शिमला (हि.प्र.) भारत। (आजीवन सदस्य)

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

उसके परिवार के सदस्य इसके बारे में कुछ नहीं जानते। वे सिर्फ जानते हैं कि इस समय वह कमरे के सबसे अच्छे कोने में सोयी हुई है। ये पंक्तियाँ यही कह रही है :

वह अभी कहाँ है क्यों है उसकी माँ नहीं जानती/ इसके सिवा कि वह अभी सोयी है कमरे के सबसे अच्छे कोने में/ वह अभी कहाँ है कैसे है उसकी चिंतित दादी नहीं जानती/ उसके सयाने हो रहे भाई नहीं जानते/ उसकी नींद में वे नहीं झाँकते।[2]

लेकिन बनानी बैनर्जी तो इस समय सोने के बजाय दुःस्वप्न देख रही है। वह दुःस्वप्न में क्या देख रही है, ये पंक्तियाँ उसे सामने लाती है :

ट्रॉम में जगह मिल जाती है बैठने की/ दो युवक एक साथ खड़े हो जाते हैं/ ठीक तभी दस्ताने में ढँका एक हाथ/ वह देखती है उसे, चीखती है नहीं, नहीं/ आज दाँतों से भभोड़ देगी उस हाथ को/ आज अपने मन की करेगी।[3]

इस दुःस्वप्न से थोड़ी देर उसकी छाती धड़कती है। वह रात भर सो नहीं पाती। कामकाजी लड़की को किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है, उसके ऊपर हर समय किस तरह का तनाव और दबाव रहता है, इसे इस कविता में कवि ने बखूबी प्रस्तुत किया है। भ्रष्ट समाज तथा पुरुषों के चारित्रिक पतन के कारण बनानी बैनर्जी रात को सो नहीं सकती। रात जो सोने के लिए होती है, जिसमें थका-हारा मनुष्य आराम करता है, वह रात बनानी बैनर्जी के लिए केवल दुःस्वप्न देखने के लिए है। वह अपनी इज्जत लुटने के डर से हमेशा भयभीत रहती है। यही कारण है कि वह रात को सो भी नहीं सकती और उसे दुःस्वप्न आते रहते हैं। 'बनानी बैनर्जी' कविता में कवि ने कामकाजी लड़की की स्थिति का चित्रण किया है, जो भ्रष्ट समाज तथा पुरुषों के चारित्रिक पतन के कारण तनाव और दबाव भरी ज़िन्दगी जीने को विवश है। पुरुषों के चारित्रिक पतन के कारण महिलाओं के शील-रक्षण के प्रश्न को विषय बनाकर कहा जा सकता है कि कवि ने स्त्री की समस्याओं, चिंताओं को बेहतर ढंग से समझा है, जिसे उनका स्त्री के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण कहा जा सकता है। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने भी 'कहाँ देखा है इसे' कविता में इससे रू-ब-रू करवाया है। मजबूर और हवस की शिकार नारी को अनेक संदर्भों में प्रस्तुत कर समाज का यथार्थ इन पंक्तियों में सामने लाया है :

देखा है इसे अफवाहों के बीच/ जब इस का पेट उठ रहा था ऊपर/ और शरीर पीला हो रहा था/ जिसे छिपाने की कोशिश में/ वह स्वयं हो गई थी अदृश्य।[4]

असुरक्षित नारी की हालत बयान करती इन पंक्तियों को देखिये :

लपलपाती जीभों के बीच/ एक दिन पड़ी थी अज्ञात/ यह नितम्बवती उरोजवती/ चेतनाशून्य सड़क पर/ यही है/ जो महारथियों के बीच नंगी होती/ करती अगिन अस्नान/ धरती में समाती रही युगों-युगों से/ लोक मर्यादा के लिए।[5]

पुरुष व्यवस्थित समाज में किस तरह पुरुष नारी के साथ दुर्व्यवहार करता है और वह चुपचाप सहती जाती है। पुरुष के दुर्व्यवहार और उससे सहमी स्त्री को विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की 'वर्तमान और भविष्य' कविता में देख सकते हैं। औरतों की पीड़ित स्थितियों को बहुत गहराई से उद्घाटित करती यह कविता बताती है कि समाज में पुरुषों की नज़रों में औरत के लिए कितनी जगह है। पुरुषों के लिए नैतिकता, मर्यादा, आदर्श, सदाचार, उदारता का कोई अर्थ नहीं होता। ये पंक्तियाँ इसका प्रमाण प्रस्तुत करती है :

कड़का वह बिजली की तरह पुरुष/ 'तुम अपना काम करो मैं अपना/ तुम्हारे काम में कोई हस्तक्षेप नहीं मेरा/ न तेरे में तेरा'/ कमाई की गड़गड़ाहट थी उसकी आवाज में/ सहम गयी स्त्री/ फिर रह गई मँजते बर्तनों की टनफन/ नल से पानी गिरने की धड़-धड़/ फिंचते कपड़ों की छप-छप/ सिलबट्टे की कच-कच।[6]

अपनी बच्ची के भविष्य में उसे अपना वर्तमान नज़र आता है। उसके चिल्लाने पर वह क्या करती है, क्या सोचती है, इसे इन पंक्तियों में देख सकते हैं :

चिल्लाई छह माह की बच्ची/ वह दौड़ी साड़ी संभालती/ जादुई स्पर्श से/ चुप किया उसने दुध मुँही को/ पुचकारती रही उसे देर तक/ शायद अपने वर्तमान से/ जोड़ती हुई उसका भविष्य।[7]

बेटियों को पैदा होने पर उन्हें पालने की चिंता माँ को नहीं सताती बल्कि वह चिंतित होती है इससे कि कहीं उनका भविष्य उन के वर्तमान की तरह न हो। पति पर निर्भर घरेलू नारी के चित्रण के बाद बारी आती है आत्मनिर्भर नारी की, जो घर

और बाहर दोनों जगह मशक्कत कर रही है। अनूप सेठी ने 'जगत में मेला' कविता-संग्रह में 'हमारे शहर की स्त्रियाँ' कविता में घर और बाहर दोनों जगह मशक्कत करने वाली औरत की मनोदशा तथा महानगर में कामकाजी स्त्री को इन पंक्तियों में चित्रित किया है :

दिन भर जुटे रहना है उन्हें/ टाइप मशीन पर, फाइलों में/ साढ़े तीन पर रंजना सावंत जरा विचलित होगी/ दफ्तर से तीस मील दूर सात साल का अशोक सावंत/ स्कूल से लौट रहा है गर्मी से लाल हुआ/ पड़ोसिन से चाबी लेकर घर में घुस जायेगा/ रंजना सावंत अंगुलियाँ चटकाकर घर से तीस मील दूर/ टाइप मशीन की खटपट में खो जायेगी। वे नहीं सुनेगी सड़ियल बॉस की खटर- पटर।[8]

ऑफिस से बाहर पूरी तरह घर को समर्पित औरतों की ज़िन्दगी से रू-ब-रू करवाते कवि कहता है :

एक साथ कई स्त्रियाँ बस में चढ़ती हैं/ एक हाथ से संतुलन बनाए/ छाती से सब्जी का थैला सटाए/ बिना धक्का खाये घर पहुँचना है उन्हें/ बंद घरों में बत्तियाँ जले रहने तक डटे रहना है/ अँधेरे में और सपने में खटना है/ नल के साथ जगना हर जगह खुद को भरना है/ चल पड़ना है एक हाथ से संतुलन बनाए।[9]

कवि ने पुरुष के साथ बिना दुर्व्यवहार करती ऐसी औरत की संघर्ष क्षमता का चित्रण किया है, जो घर और बाहर दोनों जगह कोल्हू के बैल की तरह काम कर रही है।

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की कविता-पुस्तक 'शब्द और शताब्दी' की कविताएं 'स्त्री की तीर्थयात्रा' और 'वह लड़की' में भी औरतों की जिंदगी की कटु वास्तविकता की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। स्त्री सिर्फ सेविका है और उसके प्रति समाज का नजरिया उत्पीड़नकारी है। 'स्त्री की तीर्थयात्रा' में इसे देख सकते हैं। इसमें कवि ने एक स्त्री की दुनिया को बखूबी पहचानते हुए उसके सुबह बिस्तर से उठने से लेकर शाम को बिस्तर में जाने तक के क्रियाकलाप का वर्णन किया है। स्त्री के सुबह के समय के क्रियाकलाप को इन पंक्तियों में प्रस्तुत कर कहता है :

सवेरे-सवेरे/ उसने साफ किये/ घर-भर के जूठे बर्तन/ झाड़ू-पोंछे के बाद/ बेटियों को सँवारकर/ स्कूल रवाना किया/ सबके लिये बनाई चाय।[10]

सुबह का काम निपटाकर भगवान की पूजा करने के लिए थोड़ा समय निकालती है। परन्तु उसके नसीब में तो भगवान की पूजा के लिए भी समय नहीं है। यहाँ इन पंक्तियों में इसे देखा जा सकता है, ''जब छोटा बच्चा जोर-जोर से रोने लगा/ वह बीच में उठी पूजा छोड़कर/ उसका सू- सू साफ किया।''[11] वह सबके लिए सेविका के रूप में हाजिर है परन्तु उसकी मदद के लिए कोई भी तैयार नहीं है। यही वजह है कि उसे पूजा छोड़कर अपना कर्त्तव्य निभाना पड़ता है। उसके लिए किसी के पास कोई वक्त नहीं है। वह अपने को हर स्थिति में एडजस्ट कर लेती है। कम में ही गुजारा कर लेती है। इन पंक्तियों में इसे देखा जा सकता है :

दोपहर भोजन के आखिरी दौर में/ आ गए एक मेहमान/ दाल में पानी मिलाकर/ किया उसने अतिथि सत्कार/ और खुद बैठी चटनी के साथ/ बची हुई रोटी लेकर।[12]

उसका जीवन समर्पित है घर के सभी सदस्यों के लिए। वह भी आराम करना चाहती है परंतु उसकी जिंदगी में इसके लिए कोई जगह नहीं है। वह कोल्हू के बैल की तरह काम में लगी हुई है। इस को व्यक्त कर कवि कहता है, ''क्षण-भर चाहती थी वह आराम/ कि आ गई बेटियाँ स्कूल से मुरझाई हुई/ उनके टंट-घंट में जुटी/ फिर जुटी शाम की रसोई में।''[13] सबके लिए समर्पित स्त्री की हालत यह है कि उसे खाना भी सबके बाद नसीब होता है और वह भी अपनी पसंद का नहीं, पति की पसंद का। उसकी पंसद कोई मायने नहीं रखती। इन पंक्तियों में इस तथ्य को स्पष्ट कर कवि कहता है, ''रात में सबके बाद खाने बैठी/ अबकी रोटी के साथ थी सब्जी भी/ जिसे पति ने अपनी पसंद से खरीदा था।''[14] अपनी इस जिंदगी से वह खुश नहीं दिखती। वह इसे जी नहीं रही है बल्कि ढो रही है। इसका आभास हमें इन पंक्तियों से होता है, ''बिस्तर पर गिरने के पहले/ वह अकेले में थोड़ी देर रोई/ अपने स्वर्गीय बाबा की याद में।''[15] बाबा की याद में रोने से जाहिर है कि वह शादी से पहले खुश थी अब उसकी जिंदगी खुशहाल नहीं है। यानी ससुराल में कष्टों, यातनाओं को सहनकर समर्पिता बनकर जीवन जी रही है। सोते समय भी वह चिंताग्रस्त ही दिखाई देती है। उसके जीवन में सुख नाम की कोई चीज़ नहीं है। उसकी इस स्थिति को कवि बहुत ही खूबसूरत ढंग से बयान करता है :

फिर पति की बाहों में/ सोचते-सोचते बेटियों के ब्याह के बारे में/ गायब हो गई सपनों की दुनिया में/ और नींद में ही पूरी कर ली उसने/ सभी तीर्थों की यात्रा।[16]

आज दुनिया में बड़े से बड़े बदलाव आ चुके हैं पर स्त्री की स्थिति में आया बदलाव आटे में नमक के समान है। वह परंपरित सांचे में ढली हुई उसी स्थिति, मानसिकता में जी रही है, पुरुष के अधीन बन कर रह गयी है और चुपचाप उत्पीड़न को सहन कर रही है। उसके विकास के लिए कोई जगह नहीं है, जिसके लिए हमारी पैतृक सामाजिक संरचना जिम्मेदार है जहाँ लिंगभेद के कारण स्त्रियों की दशा दयनीय है। स्त्री-विमर्श से संबंधित इसी संग्रह की 'वह लड़की' कविता में कवि ने विवाह के उपरांत स्त्री के वास्तविक परिवेश को बड़ी ईमानदारी के साथ चित्रित किया है। आँगन में अल्पना बनाती लड़की को देखकर कवि शादी के बाद उसके भविष्य को इन शब्दों में बताते हुए कहता है :

वह भूलती जाएगी/ अपना गोत्र/ अपना आँगन अपनी अल्पना/ फिर एक दीवार होगी अकेली/ और अँधेरे की दुर्गन्ध/ और सपनों की एक सुराख/ जिससे कभी-कभी झाँकेगा/ उसका बचपन/ जाड़े की किरणों में।[17]

शादी के बाद उसका जीवन अँधेरे की दुर्गन्ध से भरा हुआ होगा। वह सुबह उठकर बुहारेगी, लीपेगी, पोतेगी, कूटेगी, पीसेगी और गोंइठे के धुएँ से चूल्हे को फूँकती-फूँकती अपनी आँखों और फेफड़ों को खराब कर देगी। उसके आने वाले कल को शब्दबद्ध कर कवि कहता है, ''अल्मुनियम के तसले में/ मुटठी-भर चावल की तरह खदबदाएगी/ कपड़े सुखाती/ सूखती/ खुद को खिचड़ी की तरह परोसेगी।''[18] दिन-भर के काम निपटाने के बाद शाम को जब सब इकट्ठे होते हैं वह सभी के लिए खुशी के पल होते हैं। परंतु उसकी जिंदगी में खुशी के पल नसीब नहीं हैं। इन पंक्तियों में इसे देखा जा सकता है :

रात में जब होगा/ प्रेम का चरम क्षण/ वह निकर के लिए बच्चों के/ बिटिया की साड़ी के लिए लड़ेगी/ गालियाँ सुनती/ पिटती/ हो जायेगी निढाल।[19]

स्त्री का अपना कोई अस्तित्व नहीं है। वह अन्याय, अत्याचार को चुपचाप झेलती है। इसी सहनशीलता के कारण शोषण-तंत्र मजबूत होता रहा है और पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्त्री को दबाया कुचला गया है जो व्यवहार उसके साथ पुरुष करता है उसे कवि ने बखूबी रेखांकित किया है। घर के सदस्य जब सो रहे होंगे वह तब भी काम में ही व्यस्त होगी। क्योंकि बर्तन मांजना उसका काम है। कवि कहता है, ''सभी सो जाएँगे घर में/ वह बर्तन माँजेगी चमाचम।''[20] रोज सुबह होगी, दिन ढलेगा, रात होगी फिर दूसरे दिन सुबह होगी यानि बदलाव होगा रात के बाद दिन निकलेगा यानी अंधकार के बाद उजाला आयेगा। परंतु उसके जीवन में निराशा के घोर बादल छंटकर उम्मीद की कोई किरण नहीं दिखाई देती। उसकी इस स्थिति को देखकर कवि ने उसे एक अँधेरी सुरंग में अधूरी इच्छा-सी गुजरती हुई सही ही कहा है। यह कवि की स्त्री के प्रति गहरी संवेदनशीलता का ही प्रमाण है। आज भी अधिकांश स्त्रियाँ पराधीन हैं, वह स्वतंत्र जीवन नहीं जी सकती और अपने विरुद्ध किये जा रहे उत्पीड़न का विरोध नहीं कर सकती। उसकी इस दशा को देखकर कवि विचलित हो उठा और उसकी वेदना को वाणी दी है।

स्त्री किस तरह शोषण, अन्याय, अपमान सहती हुई, संबंधहीनता को ढोती हुई चुपचाप आजीवन घर को व्यवस्थित करने में जुटी हुई है। स्त्री के प्रति संवेदना से ओत-प्रोत कवि मंगलेश डबराल ने अपनी पुस्तक 'आवाज भी एक जगह है' कविता -पुस्तक की कविता 'तारे के प्रकाश की तरह' में स्त्री की वास्तविक स्थिति का चित्र इन पंक्तियों में खींचा है :

स्त्री की देह उसका घर है/ वह बिखरी हुई चीजों को सहेजती है/ तस्वीरों और दीवारों की धूल साफ करती है/ कपड़े तहाकर रख देती है/ वह अपने भीतर थामे रहती है टूटते पहाड़ों/ बिखरती नदियों और ढहते सौरमंडलों को/ वह कुछ कहती है या सर झुकाये हंसती है/ या उसके आँसू कुछ देर फर्श पर चमकते दिखते हैं/ ये सब उदाहरण हैं कि वह किस तरह बचाने में जुटी है।[21]

इसी तरह औरत के सच को कुमार कृष्ण ने 'पहाड़ पर नदियों के घर' कविता-पुस्तक की कविता 'पत्नी के लिए एक कविता' में बखूबी प्रस्तुत किया है। उसकी दुनिया को बखूबी पहचानते हुए उसके निःस्वार्थ भाव से किये गये कार्यों का वर्णन कर कवि कहता है, ''जब दुबके होते हैं हम मोटी रजाई में/ रोटियाँ पकाने वाली औरत/ पका रही होती है गर्म रोटियाँ।''[22] घर के सदस्य जब ठंड से ठिठुर रहे होते हैं और अपने को गर्म रखने के लिए बिस्तर में बैठे होते हैं, तब भी अपने काम में व्यस्त दिखाई देती है क्योंकि रोटी पकाना उसका काम है, भले ही ठिठुरने वाली ठंड हो। कवि ने इन पंक्तियों में स्त्री की दुनिया को बड़ी गहराई से पहचानते हुए यथार्थ अभिव्यक्ति प्रदान की है।

भ्रूणावस्था, यौवनावस्था, शादीशुदा जीवन के बाद बारी आती है नारी के विधवा जीवन की। विधवा स्त्री के तकलीफ़ भरे जीवन को बोधिसत्व ने 'हम जो नदियों का संगम है' कविता-पुस्तक की कविता 'स्त्री' में बड़ी गहराई से पहचानते हुए अभि-व्यक्ति दी है। स्त्री के विधवा होने पर उसके सपने खत्म हो जाते हैं। उसके सामने अंकुश और मर्यादाओं का निर्वाह होता है। हमारे समाज में पुरुष विधुर हो जाए तो उसके लिए दूसरी शादी के दरवाजे हमेशा खुले रहते हैं। परंतु जहाँ तक विधवा स्त्री की बात है, वहाँ पर लिंग भेद की राजनीति स्पष्ट झलकती है, यानी पुरुष को शादी का अधिकार है। पहले की तरह उसे जीवन-निर्वाह यानीद सजने-संवरने, घूमने-फिरने की इजाजत है परंतु स्त्री को नहीं। यदि वह ऐसा करती है तो समाज उसे हीन दृष्टि से देखता है, उस पर टीका-टिप्पणी करता है। आखिर लिंग-भेद की राजनीति वाले दोहरे मापदंड क्यों हैं ? कवि विधवा के जीवन को दर्द भरे शब्दों में व्यक्त कर कहता है, ''बसंत उसके लिए/ उखड़े हुए नाखून की तरह है।''[23] विधवा स्त्री के तकलीफ़ भरे जीवन को कवि ने बड़ी गहराई के साथ पहचानते हुए लिंग भेद की राजनीति को जिम्मेदार ठहराते हुए उसके जीवन को दर्द भरे शब्दों में अभिव्यक्त किया है।

स्त्री की हालत आज से दयनीय नहीं है। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने सती, सीता, शकुन्तला, आम्रपाली आदि का उदाहरण देते हुए 'अनन्त जन्मों की कथा' कविता में इसे स्पष्ट किया है। सती की कथा देखिये, पिता ने उपेक्षा की/ सती हुई मैं/ चक्र से कटे मेरे अंग-प्रत्यंग।''[24] माँ की ममता और प्रेमी के प्रेम से वंचित शकुन्तला को देखिये, ''जन्मदात्री माँ ने अरण्य में छोड़ दिया असहाय/ पक्षियों ने पाला/ शकुन्तला कहलायी/ जिसने प्रेम किया/ उसी ने इनकार किया पहचानने से।''[25] अग्नि परीक्षा से गुजरती सीता का चित्र भी दहला देने वाला है, ''सीता नाम पड़ा/ धरती से निकली/ समा गई अग्नि परीक्षा की धरती में।''[26] आम्रपाली ने तो जैसे जन्म लेकर गुनाह ही कर लिया था। उसी गुनाह की सजा भुगतती आम्रपाली को इन पंक्तियों में देखा जा सकता है, ''जन्मते ही फेंक दी गयी आम्रकुंज में/ आम्रपाली कहलाई/ सुन्दरी थी/ इसलिए पूरे नगर का हुआ मुझ पर अधिकार।''[27] उसके साथ क्या- क्या घटित नहीं हुआ। इसके सब साक्षी हैं, ''जली मैं वीरांगना/ बिकी मैं वारांगना/ देवदासी द्रौपदी/ कुलवधू नगरवधू/ कितने-कितने मिले मुझे नाम रूप/ पृथ्वी, पवन/ जल, अग्नि, गगन, मरू, पर्वत, वन/ सब में व्याप्त है मेरी व्यथा/ मुझे याद है अपने अनन्त जन्मों की कथा।''[28]

हमारे समाज में स्त्री की स्थिति हमेशा दयनीय रही है। स्त्री के दर्द के साथ अपनी इस दशा से मुक्ति के लिए प्रयासरत स्त्री को अरुण कमल की कविता-पुस्तक 'पुतली में संसार' की कविता 'स्वप्न' में देख सकते हैं। लड़कियों का विवाह कर के माँ-बाप अपना कर्त्तव्य पूरा हुआ समझ लेते हैं, चाहे उस के बाद लड़की के साथ किसी भी तरह का अमानवीय व्यवहार क्यों न हो। विवाह के बाद ससुराल पक्ष की यातनाएँ सहते-सहते दुःखी होकर वह घर से भागने को मजबूर होती है। परंतु किसी का सहारा न मिलने पर वापिस उसी जगह आना पड़ता है जहाँ से दुःखी हो कर वह भाग कर गयी थी। दुश्वार जीवन जीती वह अत्याचार सहने को मजबूर है। भीतर ही भीतर झुलस रही है। एक औरत के साथ अमानवीय व्यवहार होता देख-कर उसके पक्ष में खड़ा होकर उसकी वेदना को वाणी देता हुआ कवि कहता है :

> हर बार मार खा भागी/ हर बार लौट कर मार खायी/ जानती थी वो कहीं कोई रास्ता नहीं है/ कहीं कोई अंतिम आसरा नहीं है/ जानती थी वह लौटना ही होगा इस बार भी।[29]

वह जीना चाहती थी, इसलिए इतना कष्ट भोगते हुए वह मौत का वरण नहीं करती जबकि मौत को वरण करने के रास्ते उसके पास थे, ''गंगा भी अधिक दूर नहीं थी/ पास ही थी रेल की पटरियाँ/ लेकिन वह जीवन से मृत्यु नहीं/ मृत्यु से जीवन के लिए भाग रही थी।''[30] वह अपने को बंधनों से मुक्त करने के लिए प्रयासरत है। इन पंक्तियों में इसे देखा जा सकता है, ''खूँटे से बंधी बछिया-सी जहाँ तक रस्सी जाती, भागती/ गर्दन ऐंठने तक खूँटे को डिगाती।''[31] संघर्षरत उपेक्षित स्त्री का जीवन के प्रति आत्मविश्वास तथा उसमें आ रही चेतना इस कविता में विद्यमान है। वह हर रात एक ही स्वप्न देखती है, वह है 'मुक्ति का स्वप्न', मुक्ति तथा परिवर्तन के लिए संघर्षरत स्त्री को कवि ने इन पंक्तियों में चित्रित किया है :

> वह बार-बार भागती रही/ बार-बार हर रात एक ही सपना देखती/ ताकि भूल न जाये मुक्ति की इच्छा/ मुक्ति न भी मिले तो बना रहे मुक्ति का स्वप्न/ बदले न भी जीवन तो जीवित बचे बदलने का यत्न।[32]

अनेक यातनाओं को सहन करने के बावजूद भी स्त्री का जीवन के प्रति आत्मविश्वास इस कविता में व्यक्त हुआ है। वह बंधनों से मुक्ति के लिए प्रयासरत है ताकि उसका अपना अस्तित्व हो और दुःख से छुटकारा मिले। इस कविता में स्त्री

के बदले हुए रूप के दर्शन होते हैं, एक जागृत स्त्री की तस्वीर देखने को मिलती है। वह अपनी दयनीय स्थिति के कारणों को पहचान चुकी है। स्त्री में आयी चेतना का यह कविता स्पष्ट उदाहरण है।

अन्ततः कहा जा सकता है कि इन कवियों की कविताओं में जहाँ एक ओर स्त्री संसार की विभिन्न अवस्थाओं (भ्रूणावस्था, यौवनावस्था, गृहस्थ जीवन (घर और बाहर दोनों) और विधवा जीवन) की उत्पीड़न भरी हुई दुनिया विद्यमान है, वहाँ दूसरी ओर अपनी दयनीय हालत के लिए जिम्मेदार कारणों की पहचान हो जाने पर स्त्री में अपना वजूद प्राप्त करने की जागृत सोच भी देखने को मिलती है। स्त्री की परिस्थितियों से बखूबी वाकिफ़ कवि ने स्त्री की ज़िंदगी से सीधा साक्षात्कार कर सब को परिचित करवाने की कोशिश की है,जो निश्चित रूप से उनका स्त्री के प्रति संदेनशील मन का परिचायक है।

संदर्भ-संकेत

[1]विश्वनाथ प्रसाद तिवारी- फिर भी कुछ बचा रहेगा, पृष्ठ संख्या 55
[2]ज्ञानेंद्रपति- मिनसार, पृष्ठ संख्या 56
[3]वही, पृष्ठ संख्या 56
[4]विश्वनाथ प्रसाद तिवारी- फिर भी कुछ बचा रहेगा, पृष्ठ संख्या 7
[5]वही, पृष्ठ संख्या 8
[6]वही, पृष्ठ संख्या 24
[7]वही, पृष्ठ संख्या 24
[8]अनूप सेठी- जगत में मेला, पृष्ठ संख्या 92
[9]वही, पृष्ठ संख्या 92-93
[10]वही, पृष्ठ संख्या 21
[11]वही, पृष्ठ संख्या 21
[12]विश्वनाथ प्रसाद तिवारी- शब्द और शताब्दी, पृष्ठ संख्या 21
[13]वही, पृष्ठ संख्या 21-22
[14]वही, पृष्ठ संख्या 22
[15]वही, पृष्ठ संख्या 22
[16]वही, पृष्ठ संख्या 22
[17]वही, पृष्ठ संख्या 66
[18]वही, पृष्ठ संख्या 67
[19]वही, पृष्ठ संख्या 67
[20]वही, पृष्ठ संख्या 67
[21]मंगलेश डबराल- आवाज भी एक जगह है, पृष्ठ संख्या 69
[22]कुमार कृष्ण- पहाड़ पर नदियों के घर, पृष्ठ संख्या 16
[23]बोधिसत्व- हम जो नदियों का संगम हैं, पृष्ठ संख्या 45
[24]विश्वनाथ प्रसाद तिवारी- फिर भी कुछ बचा रहेगा, पृष्ठ संख्या 20
[25]वही, पृष्ठ संख्या 20
[26]वही, पृष्ठ संख्या 20
[27]वही, पृष्ठ संख्या 21
[28]वही, पृष्ठ संख्या 21
[29]अरुण कमल- पुतली में संसार, पृष्ठ संख्या 24
[30]वही, पृष्ठ संख्या 24
[31]वही, पृष्ठ संख्या 24
[32]वही, पृष्ठ संख्या 24-25

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) **9,66-70**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 22 अक्टूबर 2015

हिन्दी साहित्य की विलक्षण विधायें, वाद व शब्दावली

डॉ. रमेश टण्डन*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *हिन्दी साहित्य की विलक्षण विधायें, वाद व शब्दावली* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *रमेश टण्डन* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सारांश

समय के साथ-साथ हिन्दी साहित्य का भी विकास हुआ और समाज के अनुरूप विभिन्न प्रकार के साहित्यों का प्रचलन भी प्रारम्भ होते हुए तिरोहित होते चले गये। कभी कुछ वाद चला तो कभी कुछ। इसके अतिरिक्त कुछ विलक्षण शब्दावलियों के भी प्रयोग हुए। यहाँ हिन्दी साहित्य के सुधि पाठकों के लिए उन विलक्षण तत्वों को विश्लेषण करना एक मात्र उद्देश्य होगा जिससे साहित्य बेहतर रोचक बनने के साथ सर्व सुलभ हो एवं ज्ञेय हो।

रिपोर्ताज

स्वतन्त्रता के बाद यह अस्तित्व में आया। डॉ0 विश्वम्भर नाथ उपाध्याय के अनुसार, ''रिपोर्ताज में ध्यान, धारणा, कल्पना और भाव की गति में समन्विती होती है।'' डॉ0 रामविलास शर्मा ने रिपोर्ताज की निम्नलिखित विशेषताएँ कही है- 1. वस्तुगत सत्य को प्राथमिकता देना, 2. आधार पर कोई प्रतिबन्ध न होना, 3. घटक तत्व का पाया जाना, 4. प्रभावान्विति का होना, 5 जन-जीवन से अधिकाधिक प्रीति होना।

आत्म कथा

इसमें लेखक अपनी अतीत बेला को ललित शैली में प्रस्तुत करने के साथ आत्म-निरीक्षण करता है, अपने जीवन के प्रति तटस्थ रहते हुए स्वयं के दोषों को प्रकट करने में भी वह नहीं झिझकता। आत्मकथा प्रायः उत्तम पुरुष में लिखी जाती है।

* सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय [खरसिया] रायगढ़ (छत्तीसगढ़) भारत। E-mail : rameshktandan@gmail.com

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

डॉ0 त्रिगुणायत के अनुसार इसकी तीन श्रेणियाँ हैं- *1. धार्मिक वृत्ति प्रधान व्यक्तियों की आत्मकथाएँ*- उदाहरण के लिए, वियोगी हरि लिखित ''मेरा जीवन प्रवाह'', हरिभाऊ उपध्याय लिखित ''साधना के पथ'', 2. *राजनीति वृत्ति प्रधान व्यक्तियों की आत्मकथाएँ*- उदाहरण के लिए, प0 जवाहर लाल नेहरू लिखित ''मेरी कहानी'', राजेन्द्र प्रसाद लिखित ''मेरी आत्मकथा'', *3. कलाकार के जीवन की आत्मकथाएँ*- उदाहरण के लिए, के. एम. मुन्शी कृत ''स्वप्न सिद्धि की खोज'', देवेन्द्र सत्यार्थी विरचित ''चाँद सूरज'', गुलाबराय की ''हमारी असफलताएँ''।

प्रमुख आत्मकथाएँ- (लेखक) राहुल सांकृत्यायन-(कृति) मेरी जीवन यात्रा, (लेखक) यशपाल-(कृति) सिंहावलोकन, (लेखक) रामवृक्ष बेनीपुरी-(कृति) मुझे याद है, (लेखक) हरिवंश राय बच्चन-(कृति) क्या भूलूं क्या याद करूं।

यात्रा साहित्य

इसका सम्बन्ध मनुष्य की यायावरी वृत्ति से है। इसके पाँच वर्गीकरण किए जा सकते हैं- 1. प्रकृति प्रेरित उद्‌गारों के वाहक यात्रा साहित्य, 2. विवरण प्रधान यात्रा साहित्य, 3. जीवन दर्शन के विश्लेषक यात्रा साहित्य, 4. डायरी शैली में लिखे गए यात्रा साहित्य, 5. पत्रों के रूप में यात्रा साहित्य।

इस विधा के आमुख नाम हैं- राकेश यादव, निर्मल वर्मा, स0ही0वा0 अज्ञेय।

रेखाचित्र

रेखाचित्र किसी व्यक्ति, वस्तु, घटना या भाव का कम-से-कम शब्दों में मर्मस्पर्शी, भावपूर्ण और सजीव अंकन है। इसकी विशेषता विस्तार में नहीं, तीव्रता में होती है। यह अंग्रेजी के 'स्केच' शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है। विद्वानों ने पं0 श्रीराम शर्मा से हिन्दी रेखाचित्र के विकास का प्रारम्भ माना है।

संस्मरण

स्मृति के आधार पर किसी विषय या व्यक्ति के सम्बन्ध में लिखित लेख को संस्मरण कहते हैं। यह व्यापकता के आधार पर आत्म चरित्र के अन्तर्गत आता है तो शैली के आधार पर रेखाचित्र के समीप है। अंग्रेजी में इसे 'रेमिन्सेसे' और 'मेम्बायर्स' कहते हैं। हिन्दी में संस्मरण-लेखन का आरम्भ पद्‌मसिंह शर्मा के 'पद्‌म पराग' से माना जाता है।

प्रगीत

कविता के पाँच रूपों- कथात्मक, विचारात्मक, वर्णनात्मक, भावनात्मक तथा चित्रात्मक में से भावनात्मक (भावात्मक) के अन्तर्गत- प्रगीत व गीत आते हैं। प्रगीत को अंग्रेजी में 'लिरिक' कहा जाता है। भावात्मक होना और छोटा होना प्रगीत का प्रधान गुण है। आजकल प्रबन्ध की ओर झुकाव होने के कारण इसमें व्यक्तियों और घटनाओं की चर्चा करना अनिवार्य-सा हो गया है। प्रगीत के उदाहरण में, 'महाराज शिवाजी का पत्र', 'राम की शक्ति पूजा' को ले सकते हैं।

गीत

गीत की योजना में मुख्यतः चार बातों का ध्यान रखना पड़ता है- अवसर, रस, गति और राग। इसमें भावना के साथ-साथ उसकी अभिव्यक्ति भी निहित होती है। मात्रा, लय, राग, काल को ध्यान में रखते हुए गीत की रचना की जाती है। गीत के प्रमुखतः दो प्रकार हैं- प्रेम गीत, शोक गीत। पं0 सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' विरचित ''सरोज-स्मृति'' हिन्दी काव्य जगत का सर्वश्रेष्ठ शोक-गीत है।

नवगीत

नवगीत, नई कविता का गीतात्मक रूप है। इसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं- 1. वर्तमान विसंगतियों का चित्रण, 2. लोक जीवन की अभिव्यक्ति, 3. परिष्कृत सौन्दर्य बोध, 4. जन भाषा का प्रयोग, 5. लोक धुनों का प्रयोग, 6. नवीन बिम्ब योजना, 7. नवीन प्रतीक योजना, 8. नवीन उपमान योजना।

नवगीत परम्परा के सूत्रधार अज्ञेय जी हैं। इसकी पहली बार विशद चर्चा राजेन्द्र प्रसाद सिंह द्वारा संपादित 'गीतांगिनी' (1958) में हुई। नवगीत के जनक केदारनाथ अग्रवाल तथा ठाकुर प्रसाद सिंह या उमाकान्त मालवीय हैं, इसमें एकमत नहीं है। अन्य नवगीतकार हैं- रामदरश मिश्र, रवीन्द्र भ्रमर, वीरेन्द्र मिश्र, बालस्वरूप राही, रमेश शंकर, डॉ0 शम्भूनाथ सिंह, सोम ठाकुर इत्यादि हैं

हाइकू

यह जापानी कविता का एक छन्द है। यह 17 वर्णों वाला एक वर्णिक छन्द है। कुल तीन पंक्तियाँ होती हैं। प्रथम पंक्ति में 5 वर्ण, द्वितीय में 7 एवं तृतीय में पुनः 5 वर्ण होते हैं। हिन्दी में इसके कवि हुए- डॉ0 सत्यभूषण वर्मा, डॉ0 भगवत शरण अग्रवाल, डॉ0 कमलेश भट्ट 'कमल', डॉ0 सुधा गुप्ता, प्रभास शर्मा।

मिथक

प्राचीन काल की घटनाओं पर आधारित लोक कथाओं या पुराणों में वर्णित कथाओं को मिथक कहा जाता है। इसमें जन समुदाय के धार्मिक विश्वास, सृष्टि सम्बन्धी घटनाओं, समाज की अलौकिक परम्पराओं का समावेश होता है। देवासुर संग्राम, अमृत और विष की उत्पत्ति आदि मिथक हैं। जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी', धर्मवीर भारती का 'अंधा युग', नरेश मेहता की 'संशय की एक रात' मिथक आधारित ऐसी कृतियाँ हैं जिनमें आधुनिक भाव बोध को अभिव्यक्त किया गया है।

फैन्टेसी

फैन्टेसी का अर्थ मिथ्या कल्पना से लगाया जाता है। फैन्टेसी के चरित्र, क्रिया या परिस्थिति आदि में वे सब बातें सम्मिलित रहती हैं जो सामान्य परिस्थितियों में असम्भव समझी जाती हैं। जिसे कवि ने शुद्ध काल्पनिक रूप में बनाया और माना हो; और उसे बुद्धिमान, सयाने पाठक भी शुद्ध काल्पनिक मानते हों, फैन्टेसी है। शुद्ध विनोद के क्षेत्र में फैन्टेसी सर्वाधिक मनोरंजक है। फैन्टेसी विचित्रता का क्षेत्र है और यही विचित्रता ही इसका आकर्षण है। मानविकी कोश में इसे ''स्वप्नचित्र मूलक साहित्य'' कहा गया है, जिसमें असम्भाव्य सम्भावनाओं को प्राथमिकता दी जाती है। इस शब्द का निर्माण यूनानी शब्द ''फैन्टेसिया'' से हुआ है जिसका अर्थ है- 'मनुष्य की वह क्षमता जो सम्भाव्य संसार की सर्जना करती है'।

प्रतीक ; जब कोई पदार्थ किसी भाव या विचार का संकेत बन जाता है, तो वह प्रतीक कहलाता है। कबीर की रचनाओं में 'हंस', आत्मा का प्रतीक है।

बिम्ब

शब्दों के माध्यम से निर्मित चित्र ही बिम्ब कहलाता है। यह कल्पना निर्मित और भावगर्भित होता है। मानवेन्द्रियों को भावोन्मीलित करना ही बिम्ब का प्रमुख उद्देश्य होता है। सामान्यतया बिम्ब का अर्थ किसी पदार्थ को मूर्त रूप प्रदान किए जाने से लगाया जाता है। कल्पना के उन्मेष से कवि काव्य- बिम्ब का निर्माण करता है।

छायावाद

''प्रेम, प्रकृति और मानव सौंदर्य की स्वानुभूतिमयी रहस्यपरक सूक्ष्म अभिव्यंजना लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक शैली में जिस काव्य में होती है, वह छायावाद कहलाता है।''

द्विवेदी युग के प्रतिक्रियास्वरूप, स्थूलता, अतिशय नैतिकता, इतिवृत्तात्मकता के विरोध में इसका जन्म हुआ। इसमें अतीत गौरव की अभिव्यक्ति, स्वाधीनता की चेतना, राष्ट्रप्रेम, त्याग और बलिदान, अस्मिता की खोज दिखायी देती है। गांधीवादी जीवनमूल्यों का प्रभाव भी इसमें दिखायी देता है। प्रारम्भ में छायावाद का प्रयोग व्यंग्य रूप में अस्पष्ट कविताओं के लिए हुआ, जिनकी छाया (अर्थ) कहीं और पड़ती थी। परन्तु कालान्तर में यह नाम उन कविताओं के लिए रूढ़ हो गया जिनमें मानव और प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भान होता था और वेदना की रहस्यमयी अनुभूति की लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक शैली में अभिव्यंजना की जाती थी।

छायावाद की विशेषताएँ; 1. स्थूलता के स्थान पर सूक्ष्मता का दृष्टिगोचर होना। 2. रहस्यवादी आवृत्ति का विद्यमान होना। 3. प्रेम, प्रकृति, सौन्दर्य का काव्य। 4. स्वानुभूति की प्रधानता। 5. अंग्रेजी की रोमांटिक काव्य धारा से प्रभावित। 6. सांस्कृतिक चेतना, मानवतावादी दृष्टिकोण की प्रमुखता।

इसके प्रमुख कवि हैं- जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला व महादेवी वर्मा

मुक्त छन्द

हिन्दी काव्य में मुक्त छन्द का प्रवर्तन निराला ने किया। प्रारम्भ में 'रबर छन्द', 'केंचुआ छन्द' कहकर इसकी खिल्ली उड़ायी गयी। निराला के अनुसार, मुक्त छन्द से आशय अतुकान्त कविता से नहीं अपितु ''जहाँ मुक्ति रहती है, वहाँ बन्धन नहीं रहते- न मनुष्यों में, न कविता में'' है। मुक्त छन्द तो वह है जो छन्द की भूमि में रहकर भी मुक्त है।

प्रगतिवाद

छायावाद के उपरान्त 1936 ई0 के आस-पास शोषण के विरूद्ध नयी चेतना को लेकर रचा गया साहित्य जो मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित था, प्रगतिवाद कहलाया। जो विचारधारा राजनीतिक क्षेत्र में साम्यवाद या मार्क्सवाद कहलाती है, वही साहित्यिक क्षेत्र में प्रगतिवाद कहलायी। उन दिनों गांधीवादी- अहिंसा से युवक असंतुष्ट हो रहे थे।

प्रयोगवाद

व्यक्तिगत सुख-दुख एवं संवेदना को काव्य का सत्य मानकर नए-नए माध्यमों से अभिव्यक्त साहित्य को प्रयोगवाद कहा गया। प्रयोगवाद का सत्य मध्यमवर्गीय व्यक्ति का सत्य है। इसकी व्यष्टि चेतना 'अस्तित्ववाद' से अनुप्राणित है। इसका कवि 'क्षणवाद' पर यकीन करता है। प्रयोगवादी कविताएँ व्यक्ति केन्द्रित होती हैं। इसमें निराशा, क्षणवाद, कुण्ठा, अनास्था, पीड़ा, संत्रास, लघु-मानव की प्रतिष्ठा को अभिव्यक्ति मिली है। यह 1943 में स0 ही0 वा0 अज्ञेय जी के प्रथम तार सप्तक के माध्यम से प्रकाश में आया।

नकेनवाद

1943 में प्रयोगवादी कविता के दो वर्ग हुए- प्रयोगशील एवं प्रयोगवादी वर्ग। प्रयोगशील वर्ग के प्रतिनिधि कवि अज्ञेय हुए एवं प्रयोगवादी वर्ग का नेतृत्व बिहार के तीन कवियों ने किया- नलिन विलोचन शर्मा, केशरीकुमार, नरेश। प्रयोग को वाद के रूप में मानते हुए इन्होंने काव्य में बेमेल, असंगत और चमत्कार युक्त शब्दों के प्रयोग पर बल दिया।

नयी कविता

प्रयोगवाद के कारण हिन्दी कविता समाज से दूर जा पड़ी थी, नयी कविता ने हिन्दी की कविता को पुनः समाज सापेक्ष बना दिया। वस्तुतः यह 'नयी कविता' नाम प्रयोगवाद का ही दूसरा छद्म नाम था। यह छायावाद, प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद को अपने आँचल में समेटते हुए नवीन काव्य शिल्प के माध्यम से नवीन सामाजिक परिवेश में उपयुक्त जीवन मूल्य प्रस्तुत करती है।

प्रयोगवाद के विरोध में प्रयोगवाद के ही समर्थकों में सर्वप्रमुख डॉ0 जगदीश गुप्त ने सन् 1954 में प्रयोगवाद के स्थान पर ''नयी कविता'' नाम से नवीन प्रयोगवादी कवियों का अर्द्ध-वार्षिक संकलन प्रकाशित किया। प्रयोगवाद का विकास ही कालान्तर में 'नयी कविता' के रूप में हुआ। ये दोनों एक ही धारा के विकास की दो अवस्थाएँ हैं- प्रयोगवाद उस काव्य धारा की प्रारम्भिक अवस्था है और नयी कविता उसकी विकसित अवस्था। नयी कविता में विषय वस्तु की दृष्टि से जहाँ नवीनता, मुक्त यथार्थवाद, बौद्धिकता, क्षणवादी जीवन दर्शन एवं लघुमानव की प्रतिष्ठा की गई है वहीं शिल्प की दृष्टि से इसमें नवीन उपमान, प्रतीकात्मकता, बिम्बात्मकता एवं भाषा के नए प्रयोग का रूझान दिखायी पड़ता है।

कहानी

1 *नयी कहानी-* नयी कविता के तर्ज पर 1950 के आस-पास इसका सूत्रपात हुआ। देश की स्वतंत्रता के बाद नयी कहानी का सूत्रपात करते हुए नयी पीढ़ी के कलाकारों ने अपनी कहानियों में असह्य सामाजिक और वैयक्तिक घुटन तथा विवशता को अभिव्यक्ति दी। इसमें स्वाधीन भारत के व्यक्ति, समाज और जीवन के विविध पक्षों को अपना प्रमुख विषय बनाकर नवीन उद्भावनाएँ प्रस्तुत की गयीं। हिन्दी कहानी को नये आयाम प्रदान किये गये। भाव और विचार दोनों का ही विस्तार हुआ। इसके प्रमुख लेखक- मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, धर्मवीर भारती, निर्मल वर्मा, अमर कांत, मन्नू भंडारी, श्रीकांत वर्मा इत्यादि हैं।

2 *अकहानी-* 1960 के आस-पास कुछ कथाकारों ने कहानी के स्वीकृत मूल्यों के प्रति निषेध व्यक्त करते हुए अपने स्वतंत्र अस्तित्व की घोषणा की। इसके प्रवर्तक हुए- निर्मल वर्मा।

3 *साठोत्तरी कहानी-* 1960 के आस-पास संत्रास, मृत्यु, अतृप्ति आदि का अंकन उस समय की कहानियों में किया गया था। उस अंकन में अनुभूत सत्य की अपेक्षा ऊपरी आरोपण ही अधिक था। यूरोपीय साहित्य में द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त उस स्थिति के बड़े तीखे स्वर उभरे थे। हिन्दी में उसी की नकल चल पड़ी थी। ऐसी कहानियों का दौर बहुत संक्षिप्त रहा था।

4 *सचेतन कहानी-* 1964 के आस-पास महीपसिंह द्वारा प्रवर्तित सचेतन कहानी में वैचारिकता को विशेष महत्व दिया गया। इसके अन्य लेखक हैं- रामकुमार भ्रमर, बलराज पंडित, हिमांशु जोशी, सुदर्शन चोपड़ा, देवेन्द्र सत्यार्थी।

5 *समकालीन कहानी-* इसके प्रवर्तक हुए- डॉ0 गंगाप्रसाद 'विमल'। समकालीन कहानीकारों ने भावात्मक संबंधों के चित्रण-निरूपण की अपेक्षा संबंधों की विसंगति, विडम्बना, जटिलता, तनाव का बोध जगाने का प्रयत्न किया है।

6 *समानान्तर कहानी-* इसके सूत्रधार कमलेश्वर ने 1971 के आस-पास समानान्तर कहानी के रूप में निम्न वर्गीय समाज की स्थितियों, विषमताओं एवं समस्याओं का खुलकर चित्रण किया।

संदर्भ

डॉ0 नरेन्द्र मोहन- *समकालीन कहानी की पहचान*
शुक्ल, आ0 रामचन्द्र- *हिन्दी साहित्य का इतिहास*
मेरे द्वारा बनाए नोट्स

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,71-75
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 09 अक्टूबर 2015

भारतीय कृषि, कृषक एवं समाज

अरूण कुमार गुप्त*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *भारतीय कृषि, कृषक एवं समाज* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *अरूण कुमार गुप्त* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

भारत प्राचीन काल से ही एक कृषि प्रधान देश रहा है। देश अधिकांश निवासी आज भी कृषि द्वारा ही अपनी जीविका अर्जित करते हैं। भारत में ही नहीं विश्व के अन्य देशों में भी कृषि एक महत्वपूर्ण व्यवसाय रहा है', क्योंकि यह मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति का एक महत्वपूर्ण साधन है। किसी भी देश में उद्योगों के विकास से पहले कृषि का विकास किया जाना अत्यंत आवश्यक है। भारत जैसे देश के लिए जहाँ जनसंख्या के एक बड़े भाग को भोजन कृषि से प्राप्त होता है, अतः इसका विकास प्रथम आवश्यकता है। प्रायः यह कहा जाता है कि जिन देशों में कृषि एक प्रधान व्यवसाय है उनके निवासी निर्धन हैं। इस कथन में कुछ सच्चाई अवश्य है किन्तु ऐसे देशों में निवासियों की निर्धनता का कारण स्वयं कृषि न होकर कृषि का पिछड़ापन है। यह बात भारत के सम्बंध में भी पूर्णतः लागू होती है। कृषि की पिछड़ी हुई अवस्था के कारण भारतवासी निर्धन है और उसकी निर्धनता के कारण कृषि पिछड़ी हुई दशा में है। यह एक कुचक्र है जिसे राष्ट्र के हित में तोड़ना परम आवश्यक है। किंतु इससे देश के लिए कृषि का महत्व किसी भी प्रकार कम नहीं होता। कृषि भारत का सबसे महत्वपूर्ण व्यवसाय है, और सदैव रहेगा। भारत के आर्थिक विकास की कोई भी योजना उस समय तक सफल नहीं हो सकती, जब तक कि उसमें कृषि की पूर्ण विकास की व्यवस्था न की गयी हो।

कृषि उत्पत्ति

मानव द्वारा अपनाये गये उद्योगों में कृषि सर्वाधिक प्राचीन एवं महत्वपूर्ण उद्योग है। मुख्य रूप से तीन क्रियाएं- फसल का उत्पादन, फल उत्पादन तथा पशुपालन को कृषि के अंतर्गत सम्मिलित किया जाता है। इस तरह कृषि इन क्रियाओं से जुड़ी हुई है। मानव जीवन सदैव पशु-पौधों से अभिन्न रूप से जुड़ा रहता है, परन्तु यह सुनिश्चित करना अभी भी कठिन है कि

* पुस्तकालयाध्यक्ष माँ खण्डवारी पी.जी. कॉलेज [चहनियाँ] चन्दौली (उत्तर प्रदेश) भारत। E-Mail : arunkumarg402@gmail.com

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

मानव सर्वप्रथम पौधे एवं पशु को कैसे, कहां तथा कब उपयोगी बनाना सीखा ? इस आशय से अनेक विषयों के विद्वानों ने अनवरत कार्य किये हैं। फिर भी सभी विद्वान प्रक्रिया, स्थान तथा समय के सम्बंध में एकमत नहीं हैं। मानव जाति की उत्पत्ति 10 लाख वर्ष से अधिक पुरानी मानी जाती है। एक लाख वर्ष पूर्व सर्वप्रथम पौधे, अन्न पदार्थीकरण यन्त्रों का अविष्कार हुआ तथा 10 हजार वर्ष पूर्व प्रथम बार खेती का कार्य प्रारम्भ हुआ।

कृषि का स्वभाव

आजादी के समय कृषि पिछड़ी अवस्था में थी उसमे श्रम और भूमि की उत्पादिता कम थी। खेती का ढंग परम्परागत था। अधिकांश किसान पुरानी रीतियों से खेती करते थे। रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग नाम मात्र को था। किसान प्रायः जीवन निर्वाह के लिए ही खेती करते थे। बड़े पैमाने पर कृषि का वाणिज्यीकरण नहीं हुआ था। सन् 1951-52 में किसानों के उपभोग में लगभग 45 प्रतिशत अंश उनके ही द्वारा उत्पादित वस्तुओं का होता था। भारतीय कृषि को परम्परागत और गतिहीन कहना ही पर्याप्त नहीं है। स्वतंत्रता के समय कृषि के स्वरूप को समझने के लिए उस समय की भूमि सम्बंधों, कृषि जोतों के आकार कृषि तकनीकों, सिचाई के सुविधाओं, व्यापक, ग्रामीण ऋणग्रस्तता आदि बातों पर विचार और ध्यान देने की आवश्यकता है।

कृषि का विकास

प्रारम्भिक काल में भौतिक एवं सामाजिक अवरोधों के कारण खेती कार्यविधि में विकास की गति पर्याप्त धीमी रही। पशु पाषाण युग में मानव ने विशिष्ट शिकार एवं फल एकत्र करने की कला अर्जित की। इस समय तक मानव का अधिकांश समय भोजन की तलाश में व्यतीत होता था, पेड़ की शाखाओं पर जीवन गुजारने के बाद जमीन पर अस्थाई रूप से कैम्प लगाना शुरू किया। इस अवस्था में भूख, पीड़ा, स्थायी समस्या थी। इस समस्या के समाधान हेतु मानव ने कुछ पौधों तथा पशुओं का चुनाव किया तथा उन्हें अपने जीवनयापन का आधार बनाया। इस प्रकार कृषि मानव का प्रयास मात्र है। जिससे मानव ने प्राकृतिक सीमाओं को पार करके कृषि योग्य भूमि की खोज प्रारम्भ की तथा अपनी आवश्यकता के अनुरूप वातावरण को परिवर्तित किया। इस पालन कला में मानव ने कुछ लाभकर पौधों को अपने निवास के निकट उगाना प्रारम्भ किया। ऐसा अनुमान है कि मानव अधिकांश जीवन काल शिकारी के रूप में व्यतीत करता रहा। पुरापाषाण युग में आग का अविष्कार हुआ। इस प्रकार आग की खोज तथा कृषि विकास दोनों महत्वपूर्ण नवीन प्रक्रियाएं हैं।

देश में कृषि उत्पादन एवं कृषि के विकास के क्षेत्र में अनेकों प्रयास किया जा रहा है। आज आवश्यकता इस बात की है कि ग्रामीण संरचना को मजबूत कर मूल्य प्रवर्धन बढ़ाकर कृषि व्यवसाय में तेजी लाकर, कृषि के क्षेत्रों में रोजगार का सृजन कर किसानों, मजदूरों व उसके परिवारों का जीवन स्तर सुधार कर नये रास्ते बनाये जा सकते हैं। यदि इन बातों पर गहराई से अमल किया जा सके तो निःसन्देह अधिकांश किसानों का तो भला होगा ही, कृषि उत्पादकता भी बढ़ेगी। कृषि की उत्पादकता बढ़ाने के लिए सबसे जरूरी है कि भू-सुधार कार्यक्रम को कारगर बनाया जाय, किसानों को समय पर उच्च गुणवत्ता के बीज उपलब्ध कराये जाये तथा वैज्ञानिक तरीकों से खेती की जाय। देश में तमाम विपरीत परिस्थितियों में भी हमारी कृषि उत्पादकता को बढ़ाने के लिए क्या किया जाय कि कृषि उत्पादकता में सुधार हो सके। इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि हमारे किसान भाई उत्पादकता बढ़ाने में सक्षम हैं। आवश्यकता इस बात की है कि सरकार के द्वारा उचित सुविधा किसानों को मुहैया करायी जाय। जब देश की उत्पादकता बढ़ेगी तभी कृषि वस्तु के उत्पादन में लागत मूल्य कम होगा। कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए सरकार द्वारा निम्नलिखित कार्य किया गया है; 1- नवीन तकनीक का प्रयोग। 2- भूमि सुधारों का क्रियान्वयन। 3- कृषि आदानों की उचित पूर्ति। 4- सिचाईं सुविधाओं का विकास। 5- बाढ़ नियंत्रण। 6- पर्याप्त साख की पूर्ति। 7- मूल्यों में स्थायित्व। 8- विपणन व्यवस्था में सुधार। 9- कृषि अनुसंधान। 10- जनसंख्या का कम दबाव। 11- गहन खेती। 12- यन्त्रीकरण। 13- वैज्ञानिक खेती। 14- मिश्रित खेती।

भारत में कृषि विपणन की वर्तमान व्यवस्था

भारत में कृषि उत्पादन के विपणन की तीन प्रणालियां प्रचलित हैं।

गांव में कृषि उत्पादन की बिक्री; भारत में कृषि उत्पादन का अधिकांश भाग गावों में ही बिक जाता है। इसके कई कारण है :

अ- भारत में अधिकांश कृषक गरीब है। जिन्हें खाद-बीज तथा उपभोग आदि के लिए गांव के महाजन साहूकार से समय-समय पर ऋण लेने पड़ते हैं। ये ऋण बहुधा फसल की जमानत पर ही लिये जाते हैं। फसलों की कटाई होते ही कृषकों को महाजन का ऋण वापिस करना होता है। जिससे कृषि उत्पादन का एक भाग गांव में ही बिक जाता है।

ब- भारत में अधिकांश किसान छोटे होते हैं। उनके पास जमीन बहुत कम है। जिससे उत्पादन बहुत कम होता है, शहरी मंडियों में माल बेचने पर उनका खर्च बहुत आ जाता है। अतः कृषक अपनी उपज को ग्रामीण व्यापारियों को ही कम मूल्य पर बेचना स्वीकार कर लेते है।

स- गांव में कृषि उपज को बेचने से कृषक को उपज का मूल्य तुरन्त ही नगद मिल जाता है। जिससे कृषक अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति शीघ्र ही कर लेता है।

2- मण्डियों में कृषि उत्पादन की बिक्री; भारत में मण्डियां नगर या कस्बे स्तर पर हैं। आढ़तिये कृषकों को प्रलोभन देकर अपनी मण्डी में बुलाते हैं और वहां पर कृषकों को खूब ठगते हैं और उनका मनमाने ढंग से खूब शोषण करते हैं।

3- सहकारी विपणन-1954 से पूर्व भारत में ऐसी सहकारी विपणन समितियों की स्थापना नहीं हुई थी जो कि सरकारी साख समितियों से भिन्न हो। इन समितियों की पृथक स्थापना से पूर्व सहकारी साख समितियाँ ही अपने सामान्य कार्यो के साथ-साथ कृषि पदार्थों के विपणन का भी कार्य करती थी। यद्यपि 1954 में बहुउद्देशीय समितियों की स्थापना हुई जो कृषकों को साख प्रदान करने के साथ-साथ उनके अतिरिक्त उत्पादन का विपणन भी करती थी।

सरकारी विपणन ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारिता के माध्यम अथवा सहकारिता के सिद्धान्त पर आधारित एक विपणन व्यवस्था है। इस व्यवस्था के अंतर्गत कृषकों को सरकारी प्रयासों द्वारा फसल का उपयुक्त मूल्य दिलवाने का प्रयास किया जाता है। जिससे उसका कृषि उत्पादन के प्रति आकर्षण बना रहता है तथा पुराने ऋणों के भुगतान में भी सहजता रहती है।

कृषि में तकनीकी परिवर्तन

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कृषि से सम्बद्ध प्रत्येक क्षेत्र में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए हैं। कृषि की अनिश्चितता को दृष्टिगत रखते हुए कृषि को 'मानसून का जुआ' कहा जाता था किंतु आज वर्तमान समय में इस दृष्टिकोण परिवर्तन हुआ है। वर्तमान में किसान मानसून पर निर्भर नहीं है, उसे सिचाई के लिए नहर, ट्यूबबेल, कुएं आदि की अच्छी सुविधाएं उपलब्ध है। अधिकतम उत्पादन के लिए वर्तमान में किसान देशी खाद पर निर्भर नहीं है। बल्कि किसान रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग करने लगा है। इसी प्रकार कृषि के लिए सभी क्षेत्रों में परिवर्तन हुआ है। इसी परिवर्तन को कृषि में 'तकनीकी परिवर्तन' की संज्ञा दी जाती है। इसे हम इस प्रकार भी स्पष्ट कर सकते हैं कि लगभग पांच दशक पूर्व किसान हल-बैल से कार्य करता था। किन्तु वर्तमान समय में 80 प्रतिशत किसान हल-बैल के स्थान पर ट्रैक्टर तथा अन्य आधुनिक उपकरणों का प्रयोग कर रहे है। यही तकनीकी परिवर्तन है।

आधुनिक युग में कृषि में जा तकनीकी परिवर्तन हो रहे है। उसमें अनेक उत्पादनों की भूमिका है। इसमें ये सर्वप्रमुख है। 1- सिचाई, 2- उर्वरक, 3- पौध संरक्षण, 4- कृषि यंत्रीकरण एवं उपकरण।

पंचवर्षीय योजना में कृषि का यन्त्रीकरण

भारत के पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि यन्त्रीकरण की पाचवीं पंचवर्षीय योजना में स्थान दिया गया था। इस योजना में यन्त्रीकरण को आवश्यक रूप से अपनाने का उल्लेख किया गया था। इसके उद्देश्य के विषय में योजना प्रारूप में कहा गया था कि ''यदि आवश्यक हो तो यन्त्रीकरण किया जाय। जिससे खेती में अधिक उत्पादन हो, अधिक फसले ली जा सके और रोजगार के अवसर बढ़े''। छठीं योजना में चुनिन्दा यन्त्रों के उपयोग करने पर किसानों पर बल दिया गया। जिससे ग्रामीण क्षेत्रों

में बेरोजगारी न बढ़े। सातवीं एवं आठवीं पंचवर्षीय योजना में उन्नत कृषि यन्त्रों को अपनाने पर बल दिया गया। यन्त्रों की खरीद के लिए, ऋण उपलब्ध कराने के लिए निर्देश भी जारी किये गये थे।

भारतीय कृषि व्यवस्था में यंत्रीकरण का प्रयोग तालमेल के अनुसार किया जाना चाहिए। यन्त्रीकरण उद्देश्य यह हो कि उत्पादन और रोजगार में वृद्धि हो। देश में ही यन्त्रों के निर्माण की वृहद ईकाइयां स्थापित की जाय। उपलब्ध उपकरणों में सुधार, नवीन यन्त्रों के निर्माण हेतु अनुसंधानशालाओं का विकास किया जाना आवश्यक है। साथ ही कृषकों के लिए उपकरणों की मरम्मत और सुधार का भी कृषि क्षेत्र के समीप ही प्रबन्ध होना चाहिए। इन्हीं परिस्थितियों में भारत में यन्त्रीकरण की सफलता संभव है।

वैश्वीकरण का भारतीय कृषि पर प्रभाव

यद्यपि विश्व व्यापार संगठन के सम्मेलनों में कृषि के सम्बन्ध में अनेक संधियों को अंतिम रूप से प्रदान किया गया है।

किन्तु इन सन्धियों का सैद्धान्तिक पक्ष विकासशील देशों के हित में प्रतीत नहीं होता है। ऐसा अनुभव किया जा रहा है कि इन सन्धियों के अंतर्गत हुए समझौते का कार्यावयन का विकासशील देशों की कृषि व्यवस्था पर पड़ा है तथा भविष्य में भी दुष्प्रभाव ही पड़ने की सम्भावना है। इस सन्धियों में उल्लेख किया गया है कि विकसित देशों द्वारा कृषि को प्रदान की जाने वाली सहायता का आगामी वर्षों में अधिक बढ़ाने का प्रयास किया जायेगा। य़द्यपि विकसित देश ग्रीन बाक्स तथा ब्ल्यू बाक्स सहायता के अधीन अपनी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में कृषि को प्रदान की जाने वाली सहायता के क्रम को जारी रखेंगे।

स्वदेशी समर्थन अनुदान के समान ही विकासशील देशों को अपने नाम मात्र निर्यात अनुदान में वृद्धि करने की अनुमति प्रदान नहीं की जा सकती है। इसके विपरीत विकासित देशों को अपने आधार पर अनुदान को 64 प्रतिशत तक स्वतंत्रता प्रदान की गई है। इसके परिणामस्वरूप विकसित देशों में कृषि आयात राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में विद्यमान कीमत से ही कम कीमत पर प्राप्त किये जा सकते हैं।

वास्तविक आर्थिक राष्ट्रीय जगत में उन लोगों की दुनिया सर्वथा पृथक है जो काल्पनिक तथा मुख्य व्यापार के पक्षधर हैं। यह बात स्पष्ट है कि कृषि बाजारों में इसका अस्तित्व बनाये रखने के लिए तुलनात्मक लागत पर कम निर्भर रहने की आवश्यकता है और अनुदान पर तुलनात्मक रूप से अधिक आश्रित रहना श्रेयस्कर होगा। स्थानीय खाद्य बाजारों में अबाधित प्रतिस्पर्धा के कारण उदारीकरण कुशलता उत्पन्न करने का कोई महत्वपूर्ण उपाय नहीं है। वरन यह लोगों की जीविका नष्ट करने का एक फार्मूला है। यह तथ्य सर्वविदित है कि कुछ वर्षों पूर्व भारतीय कृषि वस्तुओं की कीमतें अंतर्राष्ट्रीय कीमतों से कम थी किंतु विकसित देशों द्वारा कृषि निर्यात के लिए भारी मात्रा में अनुदान प्रदान किये जाने कारण परिस्थिति में तेजी से बदलाव दृष्टिगत हुआ। अब अंतर्राष्ट्रीय कृषि कीमतें भारतीय कृषि कीमतों से नीचे हो गयी है। जिसके परिणामस्वरूप भारतीय किसानों को अत्यंत हानि का सामना करना पड़ा है। भारत के अनेक भागों में कृषकों द्वारा खुलेआम की जाने वाली आत्महत्याएं और राज्यों में कृषि क्षेत्र में बढ़ती हुई अशान्ति इस बात का द्योतक है कि कृषि निर्यात वस्तुओं में संलग्न को घोर संकट का सामना करना पड़ रहा है। भारतीय समाज में यह एक अत्यंत गहन मानवीय समस्या बन चुकी है। इस बात से प्रेरित होकर प्रमुख अर्थशास्त्रियों ने विश्व व्यापार संगठन के समझौतों से उत्पन्न हुई विपरीत स्थिति के कारण उत्पन्न हुई दयनीय स्थिति की तरफ सरकार का ध्यान आकर्षित किया है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि की निर्णायक भूमिका है। कृषि तथा सम्बद्ध गतिविधियों द्वारा भारत के सकल घरेलू उत्पाद में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया जाता है। भारत के सकल घरेलू उत्पाद का 35 प्रतिशत भाग कृषि से प्राप्त होता है। भारतीय अर्थ-व्यवस्था में लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या को कृषि द्वारा रोजगार प्रदान किया जाता है। कृषि से वृद्धि का गरीबी सुधार पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। भारत के कुल निर्यातों में कृषि उत्पादों का महत्वपूर्ण स्थान है। भारत में अधिकांश उद्योग धन्धे वर्तमान में भी कच्चे माल तथा बाजार उपलब्धि की दृष्टि से कृषि पर आश्रित हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

ओझा बी0एल0 और अग्रवाल, डा0 अनुपम (2011)- अर्थशास्त्र, एस.वी.पी.डी. पब्लिकेशन्स
त्रिपाठी, डा0 नरेश चन्द्र एवं सिंह, डा0 सुनीत कुमार (2005)- भारतीय अर्थव्यवस्था, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
शर्मा, ओ0पी0 (2001)- भारतीय अर्थव्यवस्था की दिशा, आर. बी. एस. ए. पब्लिशर, जयपुर
माथुर, डा0 रीता (2008)- भारतीय अर्थव्यवस्थ, पंचशील प्रकाशन, जयपुर
सिन्हा, बी0सी0 (2006)- विकास नियोजन एवं नीतियाँ, साहित्य भवन
मिश्र, डा0 जयप्रकाश (2006)- अर्थशास्त्र, विजडम बुक्स वाराणसी
DESAI, VASANT (1998); *Management of small scale industries*, Himalaya Publishing house.
VERMA,MAHESH, (2012); *Indian economy,* Shishti Book Distributors, New Delhi.(India).
SHARMA,NIHARIKA (2012); *Micro Finance,* Sagar Publishers Jaipur .
MATHUR, REKHA(2012); *History of Economic thought*, shishti Book Distributors, New delhi (India).
POONIYA, DR. VIRENDER S.(2012); *Money and Banking in India*, Shishti Book Distributors New Delhi (India).

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,84-88
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 16 अक्टूबर 2015

"पाँचवीं अनुसूची क्षेत्र [पेसा क्षेत्र] में महिला नेतृत्व, ग्राम पंचायत बेलरगांव के विशेष संदर्भ में"

प्रकाश कुमार छाता*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *"पाँचवीं अनुसूची क्षेत्र [पेसा क्षेत्र] में महिला नेतृत्व, ग्राम पंचायत बेलरगांव के विशेष संदर्भ में"* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *प्रकाश कुमार छाता* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

अध्ययन का महत्व

पांचवी अनुसूची क्षेत्र (पेसा) में महिला नेतृत्व के संबंध में ज्ञान प्राप्त करना ताकि विकास के संबंध में आ रही समस्याओं एवं कमियों को पूरा किया जा सके। ग्राम पंचायत में आय के स्त्रोत एवं ग्रामीण सहभागिता का भी अध्ययन करना, ताकि विकास कार्य में महिला नेतृत्व की भूमिका के बारे में ज्ञान हो सके एवं उनके क्षमता विकास (प्रशिक्षण) कार्यक्रम एवं नीति निर्माण हेतु सहयोग प्राप्त हो सके।

छत्तीसगढ़ राज्य मातृ प्रधान क्षेत्र है, जहा हर गांव और कस्बों में नारी रूपी मातृशक्ति की देवी रूप में पूजा की जाती है। राज्य के अधिकांश क्षेत्र में बच्चों की पहचान पिता के साथ मातृ के नाम से की जाती है। जैसे-कि राम माता कौशिल्या और राजा दशरथ के पुत्र हैं।

छत्तीसगढ़ पहला राज्य है। जहाँ 33 प्रतिशत आरक्षण के बदले 50 प्रतिशत आरक्षण महिलाओं का नेतृत्व हेतु दिया, जहा कमावेश लगभग 55-60 प्रतिशत में महिलायें पंचायतीराज में नेतृत्व संभाल रही हैं।

नेतृत्व की अवधारणा एवं जनजातीय नेतृत्व

सामान्य अर्थ में नेतृत्व को प्रभाव के रुप में परिभाषित किया जा सकता है। यह व्यक्तियों को प्रभावित करने की एक कला एवं प्रक्रिया हैं, जिसके द्वारा सामूहिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु स्वेच्छा से उनको आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया जाता है।

* शोध छात्र, समाजकार्य विभाग, डॉ. सी.वी. रमन विश्वविद्यालय [कोटा] विलासपुर (छत्तीसगढ़) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in,

जार्ज टेरी के अनुसार ''नेतृत्व व्यक्तियों को पारस्परिक उद्देश्यों के लिए स्वैच्छिक प्रयत्न हेतु प्रभावित करने की योग्यता है।''

हॉज तथा जॉनसन के अनुसार ''नेतृत्व आधारभूत रुप से वह योग्यता है जिसके आधार पर औपचारिक या अनौपचारिक स्थितियों में दूसरों की अभिवृत्तियों एवं व्यवहार का निर्माण किया जाता है और उसे एक निश्चित दिशा में ढाला जाता है।''

स्वतंत्रता के बाद से जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है एवं इसने जनजातीय समुदायों को बहुत तेजी से प्रभावित किया है। शासन के कठोर प्रशासनिक नियंत्रण ने भी परम्परागत् जनजातीय नेतृत्व के मार्ग को प्रभावित किया है। (लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण एवं जनजातीय नेतृत्व- पेज 59-62-63)

अध्ययन का उद्देश्य; ❖ पांचवी अनुसूची क्षेत्र में महिला नेतृत्व संबंधी ज्ञान। ❖ महिला जनप्रतिनिधी का पंचायती राज विकास कार्य में योगदान। ❖ महिला जनप्रतिनिधी का दायित्व निर्वहन के संबंध में ज्ञान।

अध्ययन की परिकल्पना; ❖ पांचवी अनुसूची क्षेत्र (पेसा) में महिला नेतृत्व कम होता है। ❖ महिला जनप्रतिनिधी पंचायतराज कार्य/ विकास कार्य में कम भाग लेती है। ❖ महिला जनप्रतिनिधी होने के कारण ग्राम सभा में सहभागिता कम होती है।

अध्ययन वर्ष; अध्ययन वर्ष 2011-12 से 2012-13

अध्ययन क्षेत्र; ग्राम पंचायत बेलरगांव सिहावा विधान सभा एवं विकास खण्ड नगरी, जिला धमतरी को चुना गया। ग्राम पंचायत बेलर क्षेत्रफल के दृष्टि से सबसे बड़े ग्राम पंचायत है एवं जिला धमतरी के विकास खण्ड नगरी से 25 किलोमीटर दूर पर महानदी के किनारे स्थित है। इसके एक छोर उत्तर दिशा महानदी से तथा दूसरा छोर दक्षिण में सीतानदी नवागांव एवं पश्चिम में दुधावा बांध से लगा है। इसके आश्रित ग्राम भूमका, बनोरा, ड़ोमपदर, हिर्रीड़ीह है। जिसकी जनसंख्या 2001 के आधार पर 5451 है; जहाँ आदिवासी बहुल्य परिवार है तथा महिला जनप्रतिनिधी ग्राम पंचायत की सरंपच है।

ग्राम पचायत बेलरगांव की जनसख्या 2001

क.	ग्राम पंचायत का नाम	योग	जनसंख्या		अनुसूचित जाति		अनुसूचित जनजाति		अन्य पिछड़ा वर्ग	
			महिला	पुरुष	महिला	पुरुष	महिला	पुरुष	महिला	पुरुष
1	ग्राम पंचायत बलेरगांव	4951	2276	2675	100	103	1163	1107	1513	1465

सामाजिक, वानिकी क्षेत्र; ग्राम में सभी जाति धर्म के लोग निवासरत है। परन्तु आदिवासी में गोंड, पिछडा वर्ग में साहू, कोष्टा, एवं कुम्हार की बहुल्यता इस गांव में है। यहां के लोगों का सामाजिक क्षेत्र में विशेष पहचान है जो सभी छोटे बड़े को लेकर ग्राम एवं क्षेत्र हित में कार्यरत है। मुख्य जीवकोपार्जन के साधन कृषि एवं वनोपज संग्रहण एवं कृषि से संबंधित कार्य।

गांव के निकट डोंगरी पहाड़ है जो वनों से अच्छादित है। जहाँ से वनोपज एवं ईधन हेतु लकड़ी प्राप्त होती है, तथा कई प्रकार के जंगली जानवर इन्हीं वनों में रहते हैं। सीतानदी अभ्यारण गांव से कुछ किलोमीटर दूरी से ही, प्रारंभ होता है।

राजनैतिक क्षेत्र; ग्राम पंचायत बेलरगांव राजनैतिक क्षेत्र में पीछे नहीं है यहाँ के लोग स्वतंत्रता संग्राम में बढ़-चढ़ के हिस्सा लिये थे। यहाँ के स्वतंत्रता संग्राम सेनानी श्री धिराजी पटेल जेल में ही अग्रेंजो के अत्याचार से शहीद हो गये थे। उनके साथ श्री फिरतूराम यादव, श्री शोभा राम, श्री सोनाऊराम जेल में बंद थे। वर्ष 1957 में न्याय पंचायत का गठन हुआ जिसके प्रथम चेयरमैन श्री बरनराम पटेल बने। ग्राम पंचायत के प्रथम गठन 1965 में हुआ, जिसके सरपंच श्री गुलजारीमल जी थे उसके बाद श्री निरगुन ठाकुर, श्री भंगीराम नायक, श्री दउवालाल जी देवांगन, श्रीमती धनेश्वरी मरकाम, श्री भगवान सिंह ठाकुर एवं श्रीमती भुनेश्वरी नेता बनें।

धार्मिक क्षेत्र; मां दंतेश्वरी बेलरगांव का प्राचीन प्रख्यात मंदिर है। मां दंतेश्वरी का दर्शन करने प्रतिदिन बहुत से श्रद्धालू लोग आते हैं। माता शीतला का मंदिर है वनदेवता ग्राम देवता भी यहाँ हैं। आदिवासी बाहुल्य होने से यहाँ पर ठाकुर देव, वन देव, के साथ प्रकृति की भी पूजा की जाती है।

निष्कर्ष

सारणी क्र. 1 राजस्व संबंधी जानकारी (2011-12 में प्रस्तावित एवं वसूली)

		करारोपण वर्ष 2011-12		
क्रमांक	करों का नाम	प्राप्त लक्ष्य	वसूली	शेष
1	सम्पत्ति कर	117146	51619	65527
2	प्रकाश कर	141305	54829	86476
3	वित्त कर	4656	1398	3258
4	नल-जल	205510	164988	40522
5	सेवा शुल्क	0	3166	.3166
6	बाजार	2350000	23242700	.20892700
7	नीलाम से आय	0	16700	.16700
8	काम्प्लेक्स किराया	152900	133800	19100
9	सफाई कर	44050	26724	17326
10	तालाब लीज	7700	6902	798
11	काजी हाऊस	0	5674	.5674
12	विविध आय	0	22152	.22152
	योग	3023267	23730652	195783

स्त्रोत :- ग्राम पंचायत बेलरगाँव 2011-12

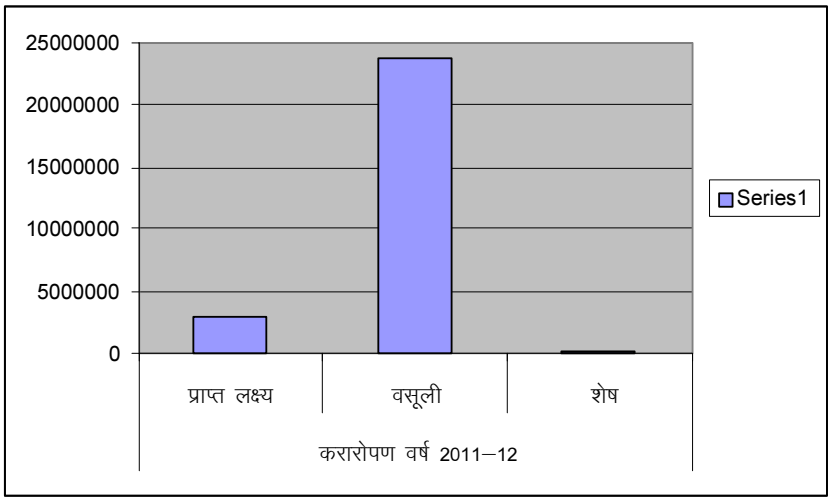

उपरोक्त सारणी-1 एवं ग्राम से निष्कर्ष निकलता है कि महिला नेतृत्व का परिणाम हैं कि, प्राप्त लक्ष्य से अधिक की वसूली हो रही है।

सारणी क्र. 2 राजस्व संबंधी जानकारी (2012-13 में प्रस्तावित एवं वसूली)

		करारोपण वर्ष 2012-13		
क्रमांक	करों का नाम	प्राप्त लक्ष्य	वसूली	शेष
1	सम्पत्ति कर	102595	9708	92887
2	प्रकाश कर	141226	9774	131452
3	वित्त कर	24035	70	23965
4	नल-जल	201322	48710	152612
5	सेवा शुल्क	7000	50010	.43010
6	बाजार	4236200	1458700	2777500

7	नीलाम से आय	10500	7200	3300
8	काम्प्लेक्स किराया	270900	50400	220500
9	सफाई कर	69826	4351	65475
10	तालाब लीज	6588	800	5788
11	काजी हाऊस	10000	5122	4878
12	विविध आय	251000	254736	.3736
	योग	5331192	1899581	400916

स्त्रोत :- ग्राम पंचायत बेलरगाँव 2012-13

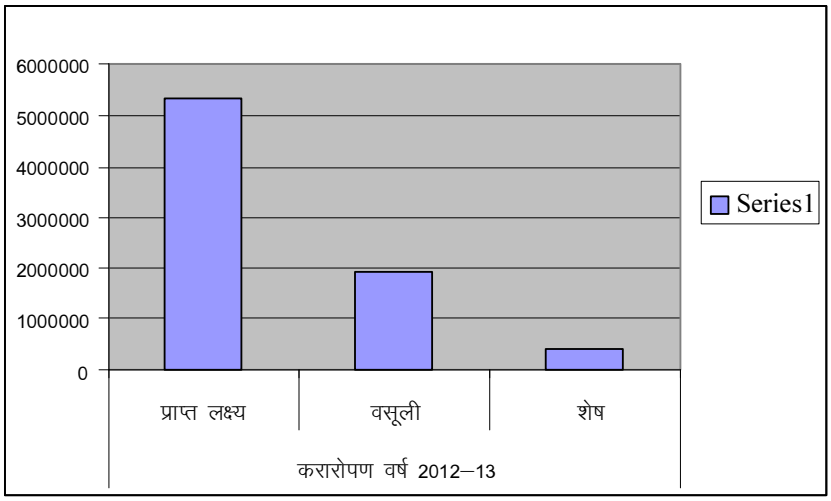

उपरोक्त सारणी -2 एवं ग्राम से निष्कर्ष निकलता है, कि महिला नेतृत्व का परिणाम एवं लोगों कि सहभागिता से लक्ष्य से अधिक की वसूली हो रही है।

सारणी क्र. 3 ग्राम पंचायत बेलरगांव में नेतृत्व क्षमता सहभागिता से संचालित योजनायें

योजना का नाम	पात्रता	चयन प्रक्रिया	देय सहायता रोशि
पंचायत आवास योजना	गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाल परिवार/आवास हीन/विधवा/ विकलांग या बीपीएल सूची में नहीं किन्तु गरीब ग्राम पंचायत का निवासी	ग्राम सभा द्वारा चयनित हितग्राही	ग्राम पंचायत मद से 45000.00 रुपये
पंचायत आवास उन्नयन	गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाल परिवार/आवास हीन/विधवा/ विकलांग या बीपीएल सूची में नहीं किन्तु गरीब ग्राम पंचायत का निवासी	ग्राम सभा द्वारा चयनित हितग्राही	ग्राम पंचायत मद से 21250.00 रुपये
मृतक संस्कार योजना	अति गरीब परिवार जो मृतक संस्कार नहीं करा पाने वाले	ग्राम पंचायत के पदाधिकारी के द्वारा	ग्राम पंचायत मद से 500.00 रुपये/20 किलो चावल
चिकित्सा सेवा योजना	प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र बेलरगांव को पंचायत मद से मिनी एम्बुलेंस प्रदान कर, इस क्षेत्र के गरीब आदिवासी एवं अन्य लोगों को चिकित्सा सुविधा प्रदान किया जाना है।		
विकलांग पाठ्य सामग्री	40 प्रतिशत से अधिक अध्ययनरत विकलांगों को कापी, पेन, जुता, युनिफार्म प्रदान करना।	संस्था प्रमुख द्वारा प्राप्त प्रतिवेदन के आधार पर	

उपरोक्त सारणी -3 से यह इंगित होता है। कि सफल नेतृत्व एवं सहभागिता से ग्राम पंचायत में स्वयं के विभिन्न योजनायें संचालित है।

ग्राम पंचायत द्वारा अन्य गतिविधियों पर सराहनीय कार्य किया जा रहा है :

1. *शिक्षा-* श्रीमती भुनेश्वरी नेता द्वारा स्कूल की गतिविधियों का समय-समय पर निरीक्षण किया जाता है एवं ग्राम सभा की बैठक में शिक्षा से संबंधित समस्याओं पर चर्चा की जाती है। समस्याओं को दूर करने हेतु ग्राम पंचायत द्वारा स्वयं के वैकल्पिक शिक्षकों की व्यवस्था की गई हैं तथा ग्राम पंचायत द्वारा विकलांग बच्चों को 8 वीं तक पठन-पाठन कार्य के लिए आर्थिक सहायता दी जा रही है।
2. *स्वास्थ्य-* ग्राम पंचायत में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र उपलब्ध है। आज ग्राम पंचायत में स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के लिए निवास की व्यवस्था किया गया है। महिलाओं व बच्चों की स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के संदर्भ में विशेष ध्यान यहाँ दिया गया। स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं ने अपने को ग्राम सभा के प्रति जिम्मेदार माना है। बेहतर स्वास्थ्य व्यवस्था मुहैया कराने हेतु ग्राम पंचायत द्वारा ग्राम सभा में सर्वसम्मति से निर्णय पारित कर स्वास्थ्य विभाग को एक एम्बुलेन्स खरीदकर दिया है।
3. *आजीविका-* ग्राम पंचायत के स्व-सहायता समूह द्वारा कपड़ा सिलाई और रेडी टू ईट खाद्य सामग्री का निर्माण कर पूरे विकासखंड में भेजा जाता है। साथ ही, आम बाजार एवं मवेशी बाजार में शिक्षित बेरोजगार युवकों का एक समूह बनाकर उन्हें साइकिल स्टैण्ड दिया गया है।
4. *स्वच्छता-* पंचायत ने ग्राम सभा में प्रस्ताव पारित कर स्वयं के आय से गांव में पक्की नालियों का निर्माण कराया हैं तथा कचरा पेटियां रखवायी है। इसकी साफ-सफाई के लिए ग्राम सभा ने कुछ लोगों को जिम्मेदारी प्रदान की है। ग्राम पंचायत में 5 स्थानों पर सुलभ शौचालय का निर्माण भी करवाया गया है।
5. *आवास व्यवस्था-* गांव के ऐसे लोग जिनका नाम गरीबी रेखा में नहीं है और वे निर्धन है। पंचायत द्वारा साल में ऐसे दो परिवारों को आवास हेतु आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है। इसके साथ दो परिवारों आर्थिक सहायता आवास मरम्मत करने के लिए भी प्रदान किया जाता है। इस पूरी प्रक्रिया में हितग्राहियों का चयन ग्राम सभा द्वारा किया जाता है। यह सरपंच के सफल नेतृत्व का ही परिणाम है।
6. *नागरिक अधिकार एवं सुरक्षा-* ग्राम पंचायत गांव के निर्धन व्यक्ति के अंतिम संस्कार हेतु आर्थिक एवं भौतिक सुविधा प्रदान करती हैं। इस संबंध में निर्णय ग्राम सभा में सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित कर किया जाता है।
7. *सिंचाई व्यवस्था-* ग्रामवासियों की आजीविका कृषि कार्य पर निर्भर है। ग्राम पंचायत महानदी के किनारे स्थित होने कारण नदी पर बांध बनाकर सिचाई कार्य किया जा रहा है।
8. *ग्राम सभा में सहभागिता-* गांव की आत्मा ग्राम सभा में निहित हैं। सरपंच एवं पदाधिकारियों के नेतृत्व से ग्राम सभा में ग्रामवासियों की उपस्थिति एवं सहभागिता अधिक होती है। जहाँ ग्रामवासी ग्राम विकास की योजना बनाते हैं।
9. *स्थाई समितियों की सहभागिता-* ग्राम पंचायत के नेतृत्व का ही परिणाम है कि ग्राम पंचायत के सभी स्थाई समितियों का गठन के साथ स्थाई समितियों की नियमित बैठके होती हैं और उनके द्वारा समस्याओं पर चर्चा कर योजनाओं का निर्माण किया जाता है।

पंचायत में सरपंच के इस नेतृत्व से लोगों का विश्वास पंचायत के प्रति धीरे-धीरे बढ़ता गया। इससे एक आदर्श ग्राम की परिकल्पना साकार हुई। 73वें संविधान संशोधन का उद्देश्य भी यही था कि ग्राम पंचायत आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए आत्मनिर्भर योजनाएं बनाये, बेलगांव के जनप्रतिनिधियों और ग्रामवासियों के आपसी ताल-मेल से विकास के नये आयाम को प्राप्त किया है।

अतः ➲ पांचवी अनुसूची क्षेत्र (पेसा) में महिला नेतृत्व कम नहीं होता है। ➲ महिला जनप्रतिनिधी पंचायतराज कार्य/विकास कार्य में भाग लेती है। ➲ महिला जनप्रतिनिधी होने के कारण ग्राम सभा में सहभागिता कम होती है, यह कहना सही नहीं है।

सुझॉव

1. ग्राम पंचायत एवं ग्राम सभा में जनप्रतिनिधियों के साथ ग्राम सभा के सदस्यों की सहभागिता होना बहुत ही जरुरी है। 2. महिलाओं के सहभागिता हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम एवं नेतृत्व विकास हेतु कार्यक्रम सम्पन्न कराना चाहिए। 3. ग्राम सभा के सदस्यों के प्रतिविश्वास बनाना सबसे जरुरी कार्य ग्राम पंचायत एवं ग्राम सभा का है। 4. महिलाओं के प्रति पुरुषों का वास्तविक व्यवहार सम्मान जनक हो। 5. महिलाओं को प्राप्त होने वाले सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक सहभागिता के अवसर प्रदान करना। 6. महिलाओं द्वारा किये जाने वाले कार्यों की प्रकृति और विस्तार में सहयोग।

संदर्भित ग्रंथ

सामाजिक अनुसंधान- राम आहूजा, रावत पब्लिकेशन्स
लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण एवं जनजातीय नेतृत्व- आशीष भट्ट, रावत पब्लिकेशन्स

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,89-91
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 19 अक्टूबर 2015

जनगणना 2011 के संदर्भ में भारतीय महिलाओं की स्थिति

डॉ. सिद्धार्थ पाण्डेय*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *जनगणना 2011 के संदर्भ में भारतीय महिलाओं की स्थिति* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *सिद्धार्थ पाण्डेय* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

आजादी किसी भी राष्ट्र या समाज का स्वरुप वहाँ की महिलाओं की स्थिति पर निर्भर करता है। नेपोलियन ने नारी की महत्ता को स्वीकार करते हुए कहा था कि, ''मुझे एक योग्य माता दे दो मैं तुमको एक योग्य राष्ट्र दूंगा।'' हमारे देश की जनसंख्या के आधे हिस्से का प्रतिनिधित्व महिलायें करती हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं के योगदान को स्वीकार किया गया है क्योंकि महिला एवं पुरुष विकास रूपी गाड़ी के दो पहिए हैं।

वर्ष 2011 की जनगणना के अंतिम आकड़ों के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या 121 करोड़ है इसं जनसंख्या में महिलाओं की संख्या 58 करोड़ है जो कुल आबादी का 40.53 प्रतिशत है। इस प्रकार महिलाएँ हमारे समाज का आधा भाग होने के कारण समाज के संचालन एवं विकास में अतिमहत्वपूर्ण हो जाती हैं।

लैगिंक अनुपात

जनगणना-2011 में स्त्री-पुरूष अनुपात में सुधार हुआ है। वर्ष 2001 में प्रति एक हजार पुरूषों के बीच 933 महिलाएँ थी जो अब बढ़कर 943 हो गयी हैं अर्थात् सकल लिंगानुपात में सुधार हुआ है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्त्री-पुरूष का सामान्य मानक 940-950 महिलायें हैं जिसे भारत ने स्पर्श कर लिया है। निम्नांकित तालिका में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सम्पन्न जनगणनाओं में स्त्री-पुरूष अनुपात में दर्शाया गया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् लिंगानुपात

वर्ष	1951	1961	1971	1981	1991	2001	2011
लिंगानुपात	946	941	930	934	926	933	940

* असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, बी. एन. के. बी. पी. जी. कॉलेज [अकबरपुर] अम्बेडकरनगर (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

जनगणना 2011 में सकल स्त्री-पुरूष अनुपात में सुधार अच्छा लक्षण है किन्तु देश के चार राज्य ऐसे हैं जहाँ स्त्री-पुरूष अनुपात बहुत खराब है। इन राज्यों में प्रति हजार पुरूषों के बीच महिलाओं की संख्या 900 से भी कम है। दिल्ली में यह अनुपात 868, हरियाणा में 879, जम्मू कश्मीर में 889 और पंजाब में 895 है। दादरा नागर हवेली में यह अनुपात बेहद कम 774 मात्र है और दमनदीव में मात्र 618 है। राज्यवार लिंगानुपात में केरल बेहतर दशा में है। यहाँ प्रति हजार पुरूषों पर 1058 महिलाएँ हैं जबकि पाण्डिचेरी में 1037 हैं।

लैंगिक अनुपात - राज्यों की स्थिति

श्रेष्ठ लिंगानुपात वाले पाँच राज्य			निम्नतम् लिंगानुपात वाले पाँच राज्य		
राज्य	2011	2001	राज्य	2011	2001
केरल	1084	1058	चण्डीगढ़	818	773
पाण्डिचेरी	1037	1001	दिल्ली	868	821
तमिलनाडू	996	986	हरियाणा	879	861
आन्ध्र प्रदेश	993	978	जम्मू कश्मीर	889	900
मणिपुर	992	978	पंजाब	895	874
भारत	943	933			

भयावह स्थिति - महिलाओं की संख्या बढ़ी पर बेटियों की संख्या घटी

जनगणना 2011 के अनुसार जहाँ स्त्री-पुरूष अनुपात में सुधार एक सुखद संकेत देता है वहीं एक खतरनाक संकेत यह है कि देश में 0-6 वर्ष की उम्र की जनसंख्या में जो कमी आयी है, उसमें लड़कों की तुलना में लड़कियों की संख्या तेजी से घटी है। लड़कियों की संख्या घटने की दर 3.80 है जबकि लड़कों की 2.48 है। 2011 की जनगणना में 0-6 वर्ष तक की जनसंख्या में लिंगानुपात 914:1000 का है, जो 1947 के बाद सबसे कम है। जनगणना 2011 का एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि 10 वर्षों में 71 लाख लड़कियाँ-लड़कों की तुलना में कम हो गयी है। शिशु लिंगानुपात में कमी इस बात का सूचक है कि भविष्य में स्त्री-पुरूष अनुपात तेजी से घटेगा। इस मामले में भारत में राज्यवार स्थिति काफी भिन्नतायुक्त है। शिशु लिंगानुपात की दृष्टि से मिजोरम और मेघालय दो सबसे अच्छे राज्य कहे जा सकते हैं जहाँ शिशु लिंगानुपात क्रमशः 971 और 970 है। वहीं हरियाणा 934 एवं पंजाब 846 शिशु लिंगानुपात के साथ सर्वाधिक बुरे राज्य हैं। शिशु लिंगानुपात दिल्ली में 871, चण्डीगढ़ में 880, राजस्थान में 888, महाराष्ट्र में 894, गुजरात में 886, उत्तराखण्ड में 890 तथा उत्तर प्रदेश में 907 है। 2001 की तुलना में लगभग सभी राज्यों में शिशु लिंगानुपात में कमी आयी है।

महाराष्ट्र और राजस्थान दोनों राज्यों में यह लगभग समान है, लेकिन दोनों राज्यों में इसके अलग-अलग कारण हैं। निम्नांकित तालिका में शिशु लिंगानुपात की दृष्टि से पाँच सर्वाधिक अच्छे राज्य एवं पाँच निचले पायदान के राज्य दर्शाये गये हैं :

शिशु लिंगानुपात-राज्यों की स्थिति

अच्छे अनुपात वाले पाँच राज्य			खराब अनुपात वाले पाँच राज्य		
राज्य	2011	2001	राज्य	2011	2001
पाण्डिचेरी	967	913	हरियाणा	834	964
केरल	964	965	पंजाब	846	961
सिक्किम	957	938	जम्मू कश्मीर	862	964
तमिलनाडू	943	959	दिल्ली	871	942
आन्ध्र प्रदेश	939	896	चण्डीगढ	880	819

साक्षरता दर

साक्षरता एवं शिक्षा में वृद्धि विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू है। साक्षरता वृद्धि का आर्थिक एवं सामाजिक विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है। 2011 की जनगणना का सुखद पक्ष सकल साक्षरता दर में विगत दशकों की तुलना में तीव्रतम वृद्धि है तो उससे भी सुखद है महिलाओं की साक्षरता दर में पुरूषों की तुलना में अधिक वृद्धि। 2001 से 2011 के बीच देश में पढ़ने की लालसा बढ़ी है। अब तक महिला व पुरूष साक्षरता के बीच साक्षरता का अन्तर अधिक था। दस साल पूर्व यह अन्तर 21.59 प्रतिशत था। अब यह घटकर 16.68 प्रतिशत रह गया है। योजना आयोग का लक्ष्य 2012 तक महिला पुरूष साक्षरता का अन्तर 10 प्रतिशत से कम पर लाया था। यह लक्ष्य केरल चंडीगढ, नागालैण्ड, त्रिपुरा, मेघालय, मिजोरम, अंडमान निकोबार द्वीप समूह ने प्राप्त कर लिया है ।

विभिन्न राज्यों में महिला साक्षरता-2011

महिला साक्षरता में श्रेष्ठ 5 राज्य			महिला साक्षरता में निम्नतम स्तर के 5 राज्य		
राज्य	2011	2001	राज्य	2011	2001
केरल	100	87.72	बिहार	46.40	33.12
मिजोरम	86.72	86.75	राजस्थान	47.76	43.8
पाण्डिचेरी	84.05	73.90	जम्मू कश्मीर	49.12	43.00
लक्षद्वीप	82.69	80.47	उत्तर प्रदेश	51.36	42.22
गोवा	82.16	75.37	झारखण्ड	52.04	38.87
सम्पूर्ण भारत	65.46	53.67			

उपर्युक्त विवरण महिलाओं की स्थिति के सम्बन्ध में आशा और निराशा का मिलाजुला बिम्ब प्रस्तुत करता है। प्रजनन दर में कमी के कारण समग्र जनसंख्या वृद्धि में कमी के साथ 0-6 वर्ष के बच्चों में लड़कियों का कम होता अनुपात एक ऐसी चुनौती है जिससे निपटने के लिए रणनीतिकारों को बेहद सतर्कता एवं विवेक से काम लेना होगा। जब तक मातृ व बाल कल्याण की खराब दशा और लिंग आधारित भेदभाव समाप्त नहीं होता, बेहतर भविष्य और गुणवत्तायुक्त जीवन का लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। समग्र साक्षरता एवं महिला साक्षरता में वृद्धि आशा की एक किरण है। जनता और सरकार दोनों का दायित्व है कि वह निष्ठा एवं प्रतिबद्धता के साथ जनांकिकीय चुनौतियों का सामना करे।

संदर्भ

सिंह, शिवभानु (द्वितीय संस्करण, 2003)- *समाज दर्शन का सर्वेक्षण,* लिंगीय समानता, पृष्ठ संख्या 395-411

लाल, एस0एन0 एवं लाल एस0के0 (2013 मई)- *भारतीय अर्थव्यवस्था का सर्वेक्षण तथा विश्लेषण*

भारत, 2011, प्रकाशन विभाग भारत सरकार

इकोनामिक सर्वे- 2012, भारत सरकार (आक्सफोर्ड)

भारत की जनगणना- 2011

योजना- विविध अंक

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) **9,92-96**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 30 सितम्बर 2015

संस्कारों का वैज्ञानिक योगदान
[संस्कार का व्यक्तित्व विकास व आध्यात्मिक योगदान]

डॉ. कीर्ति चौधरी झा*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *संस्कारों का वैज्ञानिक योगदान [संस्कार का व्यक्तित्व विकास व आध्यात्मिक योगदान]* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *कीर्ति चौधरी झा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

''संस्कार'' शब्द सम् उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु में ध्ं प्रत्यय लगाने से बनता है, जिसका शाब्दिक अर्थ है- परिष्कार, शुद्धता अथवा पवित्रता। इस प्रकार हिन्दू व्यवस्था संस्कारों से बँधी है, जो व्यक्ति के जीवन के सभी चरणों को एक नयी दिशा, ओज व स्फूर्ति प्रदान करती है। शबर का विचार है कि संस्कार वह क्रिया है जिसके सम्पन्न होने पर कोई वस्तु किसी उद्देश्य के योग्य बनती है।''[1]

''संस्कारों नाम स भवति यस्मिंजाते पदार्थो भवति योग्य : कश्चिदर्थस्य।''- जैमिनीसूत्र का टीका, 1.3

''आचार्य मनु के अनुसार संस्कार शरीर को विशुद्ध करके उसे आत्मा का उपयुक्त स्थल बनाते हैं।'[2]

संस्कार शब्द का उल्लेख वैदिक तथा ब्राह्मण साहित्य में नहीं मिलता है। मीमांसक इसका प्रयोग यज्ञीय सामग्रियों को शुद्ध करने के अर्थ में करते हैं। वास्तविक रूप में संस्कारों का विधान हम सूत्र साहित्य विशेषतया गृह्यसूत्रों में पाते हैं। स्मृति ग्रन्थों में संस्कारों का विवरण प्राप्त होता है। इनकी संख्या चालीस तथा गौतम धर्मसूत्र में अड़तालीस मिलती है। आचार्य मनु ने तेरह संस्कारों का उल्लेख किया है। बाद की स्मृतियों से इनकी संख्या सोलह स्वीकार की गयी।''[3]

मनुस्मृति के तेरह संस्कार है कालान्तर में सोलह संस्कार को स्वीकार किया गया था। संस्कार की गणना के सन्दर्भ में गृह्यसूत्रों की तरह स्मृतियों में भी भेद है। भारतीय समाज में स्मृतियों द्वारा प्रतिपादित सोलह संस्कारों का ही प्रचलन है।

सोलह संस्कार-

1. गर्भाधान; यह प्रथम संस्कार था जिसके माध्यम से व्यक्ति अपनी पत्नी के गर्भ में बीज स्थापित करता था।

* दर्शनशास्त्र विभाग, पटना विमेंस कॉलेज पटना (बिहार) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

2. *पुंसवन;* गर्भधान के तीसरे माह में ये संस्कार किया जाता है। उन देवताओं की पूजा की जाती थी, जो गर्भ में पल रहे शिशु की रक्षा करें।
3. *सीमन्तोन्नयन;* गर्भधान के चौथे से आठवें मास तक होने वाला यह संस्कार होता था। गर्भवती स्त्री के शरीर को प्रेतात्मायें नाना प्रकार की बाधा पहुँचाती हैं, जिनके निवारण के लिए धार्मिक कृत्य होता था।
4. *जातकर्म;* शिशु के जन्म के समय जातकर्म नामक संस्कार बच्चे के नार को काटने से पूर्व होता था। पिता बच्चे के पास जाकर उसे स्पर्श कर कान में आशीष वचन कहता था। इसके माध्यम से दीर्घ आयु एवं बुद्धि की कामना की जाती थी।
5. *नामकरण (नामधेय);* बच्चे के जन्म के दसवें अथवा बारहवें दिन ''नामकरण'' संस्कार होता था जिसमें उसका नाम रखाा जाता था।
6. *निष्क्रमण;* बच्चे के जन्म के तीसरे अथवा चौथे माह में यह संस्कार सम्पन्न होता था जिसमें उसे प्रथम बार घर से निकाला जाता था।
7. *अन्नप्राशन;* बच्चे के जन्म के छठे माह में अन्नप्राशन नामक संस्कार होता था जिसमें प्रथमबार उसे पका हुआ अन्न खिलाया जाता था।
8. *चूड़ाकरण (चौलकर्म);* बच्चे के प्रथमबार केश काटे जाते थे। गृह्यसूत्रों के अनुसार जन्म के प्रथम वर्ष की समाप्ति अथवा तीसरे वर्ष की समाप्ति के पूर्व यह संस्कार किया जाता था।
9. *कर्णवेध;* बालक के कान छेदकर उसमें बाली अथवा कुण्डल पहना दिए जाते थे, जिससे रक्षा व अलंकार होता था।
10. *विद्यारम्भ;* इसके अर्न्तगत बच्चे को अक्षरों का बोध कराया जाता था। कुछ लोग इसे अक्षरारम्भ भी कहते हैं। इसका समय जन्म के पाँचवें वर्ष अथवा उपनयन संस्कार के पूर्व बताया गया है।
11. *उपनयन;* इसके माध्यम से बालक सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का अधिकारी बन जाता था। वस्तुतः उसके बौद्धिक उत्कर्ष का प्रारम्भ इसी संस्कार से होता था। इसके द्वारा ''द्विज'' कहा जाता था जिसका अर्थ है दूसरा जन्म।
12. *वेदारम्भ;* वेदों के अध्ययन के महत्व के लिए ये संस्कार था।
13. *केशान्त तथा गोदान;* गुरू के पास रहकर अध्ययन करते हुए विद्यार्थी की सोलह वर्ष की आयु मे प्रथम बार दाढ़ी-मूँछ बनवाई जाती थी। इसे 'केशान्त संस्कार' कहा गया है। इस अवसर पर गुरू को गाय दान किया जाता है।
14. *समावर्तन;* गुरूकुल में शिक्षा समाप्त कर लेने के पश्चात् विद्यार्थी जब अपने घर लौटता था तो समावर्तन संस्कार होता था। जिसका अर्थ है- ''गुरू के आश्रम से स्वगृह लौटना''।
15. *विवाह;* गृहस्थाश्रम का प्रारम्भ इसी संस्कार से होता है। विवाह कई प्रकार से होते है। यह एक पुरूषार्थ को बताता है, पति, पत्नी एक साथ जीवन पर्यन्त रहते हैं।
16. *अन्त्येष्टि संस्कार;* मानव जीवन का अन्तिम संस्कार अन्त्येष्टि है, जो मृत्यु के समय सम्पादित किया जाता है। इसका उद्देश्य मृतात्मा को स्वर्ग लोक में सुख और शान्ति प्रदान करना है।

विभिन्न गृह्यसूत्रों में संस्कारों की संख्या

आश्रलायन- गृह्यसूत्र में; 1. विवाह, 2. गर्भाधान, 3. पुंसवन, 4. सीमन्तोन्नयन, 5. जातकर्म, 6. नामकरण, 7. चूड़ाकर्म, 8. अन्नप्राशन, 9. उपनयन, 10. समावर्तन, 11. अन्त्येष्टि।

इन संस्कारों का लक्ष्य षोडश-कलापुष्ट चन्द्रदेव की तरह मानव को बनाना प्रतीत होता है, क्योंकि इसके बिना जीव ब्रह्मतत्व की प्राप्ति नहीं कर सकता।

पारस्कर गृह्यसूत्र में; 1. विवाह, 2. गर्भाधान, 3. पुंसवन, 4. सीमन्तोन्नयन, 5. जातकर्म, 6. नामकरण, 7. निष्क्रमण, 8. अन्नप्राशन, 9. चूड़ाकर्म, 10. उपनयन, 11. केशान्त, 12. समावर्तन, 13. अन्त्येष्टि।

बोधायन-गृह्यसूत्र में; 1. विवाह, 2. गर्भाधान, 3. पुंसवन, 4. सीमन्तोन्नयन, 5. जातकर्म, 6. नामकरण, 7. उपनिष्क्रमण, 8. अन्नप्राशन, 9. चूड़ाकर्म, 10. कर्णवेध, 11. उपनयन, 12. समावर्तन, 13. पितृमेध।

वाराह- गृह्यसूत्र में; 1. जातकर्म, 2. नामकरण, 3. दन्तोद्गमन, 4. अन्नप्राशन, 5. चूड़ाकर्म, 6. उपनयन, 7. वेदव्रतानि, 8. गोदान, 9. समावर्त्तन।

वैखानस-गृह्यसूत्र में; 1. पितृसंगम, 2. गर्भाधान, 3. सीमान्त, 4. विष्णुबलि, 5. जातकर्म, 6. उत्थान, 7. नामरण, 8. अन्न-प्राशन, 9. प्रवसागमन, 10. पिण्डवर्धन, 11. चौलकर्म, 12. उपनयन, 13. पारायण, 14. व्रतबन्धविसर्ग, 15. उपाकर्म 16. उत्सर्जन, 17. समावर्त्तन, 18. पाणिग्रहण।

गौतर्म - धर्मसूत्र में; गर्भाधान, 2. पुंसवन, 3. सीमान्तोन्नयन, 4. जातकर्म, 5. नामकरण, 6. अन्नप्राशन, 7. चौल, 8. उपनयन, 9. 12. चारवेद व्रत, 13. स्नान, 14. सहधर्मचारिणी-संयोग, 15-19 पंचमहायज्ञ, 20-26 अष्टक, पार्वण, श्राद्ध, श्रावणी, अग्रहायणी, मैत्री, आश्रवयुजी (ये सात पाकयज्ञ), 26-33. आग्न्याधेय, अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास, चातुर्मास्य, आग्रहायणेष्टि, निरूढ़-पशुबन्ध, सौत्रामणि (ये सात हविर्यज्ञ)।

संस्कारों का लक्ष्य निर्धारित करते हुए, भगवान मनु ने कहा है, ''ब्राह्मीयं क्रियते तनुः'' अर्थात् संस्कारों का लक्ष्य जीव-शरीर को ब्रह्मत्वलाभ के योग्य बनाता है। ब्रह्मत्वप्राप्ति तभी सम्भव है जब जीव निवृत्ति मार्ग की पराकाष्ण में पहुँचकर ''त्यागेनैकेऽमृतत्व मानुषः'' को चरितार्थ करने में सक्षम होता है।

आर्य समाज के संस्थापक वैदिक संहिताओं के समर्थन महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी अपनी ''संस्कार विधि'' में 16 संस्कारों का समावेश किया है। इन्हीं ''सोलह संस्कारों'' को स्वीकार करते हुए पण्डित भीमसेन शर्मा ने ''षोडश संस्कार विधि'' नामक रचना की।

सोलह संस्कार का व्यक्तिव विकास में योगदान

मानव जीवन को व्यवहारिक व पारमार्थिक रूप देने की पद्धति को ही हम संस्कार के रूप में परिभाषित करते है। संस्कार का सम्बन्ध कर्मकाण्ड से है, इससे भी अधिक इसका योगदान अध्यात्म से है। संस्कार व्यक्ति के लौकिक जीवन को पारलौकिक सत्ता से जोड़ते हैं। जीवन के प्रत्येक कार्य को ईश्वर से जोड़ते है।

सभी संस्कारों में हम अपने इष्टों को याद करते हैं। ये समर्पण आजीवन हमें उस तथ्य का बोध कराता है, जो हममें निहित हैव हमसे परे भी- ''मंगल्यं ब्राह्मणस्य स्यात्क्षत्रियस्य बलन्वितम्। वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम्।।31।''[4]

चारों वर्ण के लिए उपनयन संस्कार के महत्व का वर्णन किया गया है। ''त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पयेत्।'' -जो तुम्हारा दिया हुआ वस्तु है वो तुम्हें समर्पित है।

''मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर। यत्पूजितं मया देव परिपूर्ण तदस्तु मे ।।'' हे देव मैं मन्त्रहीन, क्रियाहीन, भक्ति-हीन हूँ। परन्तु जिस प्रकार या जैसे भी मैनें आपकी पूजा की आप उसे स्वीकार करे व हमारी मनोकामनापूर्ण करें।

- हमारे संस्कृति के प्राण स्वरूप सभी संस्कार कर्त्तव्य निर्देश करते हैं। कर्त्तव्य बोध संस्कारों के माध्यम से होता है। व्यक्तिगत व सामाजिक सम्बन्ध-पिता-पुत्र सम्बन्ध, पति-पत्नी सम्बन्ध, इष्ट के प्रति सम्बन्ध को संस्कार पूर्णतः विकसित करते हैं। व्यक्ति के जीवन में-बाल्यावस्था, यौवन, वृद्धावस्था सभी हमारे लिये कर्त्तव्य का संकेत करते हैं जिन्हें करने पर हमें लौकिक तुष्टि व पारलौकिक शक्ति का सान्निध्य मिलता है। संस्कारों के माध्यम से गृहस्थ व्यक्ति भी परमतत्व से जुड़ने का प्रयास करता है व उसे जानने की चेष्ट करता है।
- संस्कार हमें स्वार्थ त्यागकर दूसरों के हित के पर्याय को सोचने व उसके अनुरूप कार्य करने का सन्देश देते है। सामाजिक हित के बारे में सोचने की कला व्यक्तियों को संस्कार के माध्यम से आती है।
- जिस प्राकर एक घड़ी व्यक्ति के जीवन में दिशा निर्देश करते हुए ऐसा भाव लाती है जिसके अनुसार हम समझते हैं। बीता हुआ काल कभी पुनः नहीं लौटता और वह समर्पण का पाठ पढ़ाती है। ठीक उसी प्रकार संस्कार व्यक्ति को जीवन के प्रत्येक क्षण की उपयोगिता से अवगत कराते हैं।
- हमारे व्यक्तित्व विकास संस्कारों के माध्यम से होता है, जो सामजस्य पूर्ण होता है। संस्कार के माध्यम से ध्यान की चेतना हममें जन्म से होती है, हमारा प्रत्येक कर्म हमें ये बताता है हम शरीर से परे किसी मूल तत्व से जुड़े है।

- गर्भधान से अन्त्येष्टि परक संस्कार व्यक्तित्व विकास करते हैं जो कि एक योजना के तहत चारित्रिक विकास करते हैं। वह प्रत्यक्ष रूप में नहीं अप्रत्यक्ष रूप में मानवीय जन्म को सार्थक बनाता है। गर्भ में पलने वाले शिशु का विकास किस ओर होना चाहिए ? माँ का योगदान कैसा हो ? बाल्यकाल में व्यक्तित्व कैसा हो ? विद्यार्थी की मानसिक दशा कैसी हो? पति-पत्नी का क्या सर्मपण होना चाहिए ? संस्कार एक योजना परक पद्धति के तहत व्यक्तित्व का विकास करते है।
- धर्म के संरक्षण के लिए संस्कार अत्यन्त आवश्यक है। धर्म व्यक्ति के आचार का मूल संस्करण है। संस्कारों के माध्यम से आचार की रक्षा होती है। ''आचारः परमो धर्मः सर्वेषामिति निश्चयः। हीनाचारपरीतात्मा प्रेत्य चेह च नश्यति।''[5]

व्यक्ति कितना भी उत्कृष्ट हो किन्तु आचारहीन हो, तो उसके सारे गुण व्यर्थ हैं। ''आचारो भूति जनन आचारः कीर्तिवर्धनः/ आचाराद्वर्धते ह्यायुराचारोहन्त्यलक्षणम्।।''[6]

इस प्रकार संस्कारों से आचार बनता है व आचार की रक्षा होती है।

- ध्यान की एकाग्रता संस्कारों के माध्यम से होती हैं। संस्कारों को व्यक्ति एक आयु में करता है, जिससे उसका ध्यान एकाग्र रहता है।

आज के युग में जहाँ व्यक्ति ध्यान के लिए शिक्षा लेता है वही संस्कार अपने आप जीवन के प्रत्येक चरण में हमें ध्यान से जोड़ते देते थे।

- संस्कारों से व्यक्ति के जीवन में एक व्यवस्था आती है। जो एक आशावादी जीवन की द्योतक है। व्यक्ति लौकिक जगत में रहता हुआ, पारलौकिक सत्ता का अनुभव करता है।
- ''सन्तोष परम सुखम्'' संस्कार का महत्वपूर्ण पक्ष मानव सन्तुष्टि है। मनुष्य जीवन के प्रत्येक क्षण अपने प्राप्य से सन्तुष्ट होकर अपने इष्ट के प्रति समर्पित होता है।
- संस्कार एक विधेयात्मक दृष्टिकोण प्रदान करते हैं, व्यक्ति में निराशा का भाव नहीं उत्पन्न होता है। निष्क्रमण, चूड़ाकरण, विद्यारम्भ, उपनयन आदि संस्कार व्यक्ति के जीवन में आशा बनाये रखते हैं।
- संस्कारों के व्यक्तित्व विकास के योगदान को शब्दों में समेटना कठिन है। ये व्यक्ति के धार्मिक, नैतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक जीवन के विकास की एक ऐसी सीढ़ी है, जिसपर चढ़कर ही व्यक्ति अपने लक्ष्य को पा सकता है। संस्कार एक ऐसा क्रम है, जो जन्म से पूर्व व मृत्यु के पश्चात् तक व्यक्ति को दिशा देता है। व्यक्ति के जीवन को उत्श्रृंखल बनाने से रोकता है।

संस्कार संस्कृति का आधार स्तम्भ हैं। संस्कार संस्कृति से उत्पन्न होते है- विभिन्न संस्कृति भिन्न-भिन्न संस्कारों को महत्व देती है। जिससे सभ्यता का विकास होता है। भारतीय हिन्दू धर्म में वर्णित ये 16 संस्कार जीवन को एक नया रूप, आकार, रंग व ओज देने में पूर्णतः सक्षम है।

संस्कारों की उपेक्षा का हमारे व्यक्तित्व पर प्रभाव

यदि संस्कारों को ना स्वीकार किया जाएँ या संस्कार ना हो तो परिणाम क्या होगा ? आज के परिवेश में ये जानना जरूरी है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से आज हम अपनी सभ्यता के मूल अंश को भूलते जा रहे हैं। क्या कारण है कि हम निरन्तर आपराधिक प्रवृत्ति की ओर बढ़ रहे हैं ? क्या कारण है बच्चों में बचपन आज नहीं रहता, स्वार्थ या अहंभाव उनमें रहता है। क्या कारण है हम अपने बड़ों को सम्मान नहीं दे पाते ? क्या कारण है, व्यसन हमारे जीवन में प्रमुख स्थान ले रहा है।

- इन सबका मूल कारण है हम संस्कारों के महत्व को व उसके योगदान को भूल चुके हैं। गर्भाधान के अर्न्तगत विवाह के उपरान्त पति-पत्नी बच्चे के जन्म के लिए प्रावधान करते हैं। आजकल संस्कारों के योगदान को हम नजरअन्दाज करते हैं, परिणामस्वरूप विवाह के पूर्व होने वाले संतान या विवाह के पश्चात् किसी अन्य से होने वाली संतान का एक रूप प्रकट होता है- इस तरह के सन्तान को माँ अपने शरीर से गर्भ में ही निकाल देती है या बच्चे को जन्म के बाद किसी सड़क या मन्दिर पर रख देती है।

यदि ऐसी सन्तान जन्म भी ले तो उसे उसके माता-पिता का नाम नहीं मिलता। आजीवन वो सन्तान उपेक्षित रहती है। गर्भधान के संस्कार का महत्व इस रूप में सुरक्षित है, बच्चे को सदा अच्छी शिक्षा, परिवेश, स्नेह प्राप्त होता है। गर्भाधान की पद्धति के द्वारा ही यह असामन्जस्य दूर हो सकता है।

- बच्चों में बचपन अब लुप्त सा होता जा रहा है, संस्कारों के नैतिक महत्व को हम अपने जीवन में नहीं प्रकट करते, ना ही बच्चों को संस्कार के रूप को समझाने की चेष्टा करते हैं- परिणामतः बच्चा स्वार्थी हो जाता है, उसमें अहंभाव आ जाता है वे बड़े होकर पिता-पुत्र, भाई-भाई में स्नेह नहीं रह जाता।
- संस्कार के प्रति हमारा आकर्षण नहीं रहा, जिसके कारण समस्या प्रकट हो रही है। संस्कार हमें सन्तुष्ट रखते थे, जितना हो उसमें अपने इष्ट के प्रति अनुराग के साथ जीवनयापन करते थे। संस्कारों के नैतिक महत्व को स्वीकार करने के पश्चात् ही हम फिर से वही स्नेह व प्रेम जीवन में ला सकते हैं।
- आज अपनी सभ्यता के आदर्श में है संस्कारों के परिधि को महत्व नहीं देते जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य में आपराधिक प्रवृत्ति व व्यसन बढ़ता जा रहा है। जीवन के ध्येय में हम अध्यात्म को छोड़कर भौतिकता के मार्ग पर बढ़ते जा रहे है।
- संस्कार जीवन को एक ऐसी गति देते थे, जिसमें जीवन में अपराध व हिंसा के लिए कोई स्थान नहीं होता था। व्यक्ति के जीवन में प्रत्येक आयु में होने वाली आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी जिससे व्यसन का जीवन में महत्व न था।

आज के परिवेश में संस्कारों का महत्व

संस्कारों को विभिन्न संस्कृति स्वीकार करती है, जितने भी संस्कार हैं उनका अपना महत्व है। आज के परिवेश में संस्कारों पर पुनर्विचार की आवश्यकता है।

जो संस्कार आज के परिवेश में प्रासंगिक नहीं, उसे परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित कर सकते हैं। इसके संदर्भ में गूढ़ विचार होना चाहिए। निष्क्रमण, समावर्तन संस्कार का पुनर्विचार होना चाहिए। इसके सोपान में अग्रणी विचारक आगे आये। संस्कारों में क्या छोड़े ? किस रूप में स्वीकार करें इस पर विचार करें।

आज भी हम संस्कारों को स्वीकार करते हैं, संवैधानिक रूप में हमें 18 वर्ष में वोट देने का अधिकार प्राप्त है ये भी एक संस्कार है। इस प्रकार गृह्यसूत्रों में वर्णित संस्कारों पर ही हमारी संस्कृति का वर्चस्व आज तक है। आज के युग में ये संस्कार चिर स्थायी हैं, जिनसे ही व्यक्तित्व विकास व परात्म की प्राप्ति संभव है।

संदर्भ-सूची

[1]प्रचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति -(लेखक)कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव, प्राकशक- युनाइटेड बुक डिपो, संस्करण 2000, पेज 174

[2]प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति -(लेखक)कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव, प्राकशक- यूनाइटेड बुक डिपो, संस्करण 2000, पेज 174

[3]प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति -(लेखक)कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव, प्राकशक- यूनाइटेड बुक डिपो, संस्करण 2000, पेज 175

[4]मनुस्मृतिः, मेधातिथि- 'मनुभाष्य'-समेता(सम्पादक) महामहोपाध्याय पं0 गंगानाथ झाँ, लेखक -डॉ0 आर0 एन0 शर्मा, द्वितीयोऽध्याय, पेज 90

[5]गौतम धर्मसूत्राणि (हिन्दी व्याख्याविभूषित)हरदत्त कृत- मिताक्षरावृत्ति- सहितानि, हिन्दी व्याख्याकार- डॉ0 उमेशचन्द्र पाण्डेय, चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी, पेज 21, संस्करण- तृतीय वि0 संवत् 2050

[6]गौतम धर्मसूत्राणि (हिन्दी व्याख्याविभूषित) हरदत्त कृत- मिताक्षरावृत्ति- सहितानि, हिन्दी व्याख्याकार- डॉ0 उमेशचन्द्र पाण्डेय, चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी, पेज 21, संस्करण- तृतीय वि0 संवत् 2050

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,101-104
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 23 अक्टूबर 2015

"वेदान्त" पर भाष्यकार आचार्यों के नवीन सम्प्रदाय

डॉ. तनूजा अग्रवाल*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *"वेदान्त" पर भाष्यकार आचार्यों के नवीन सम्प्रदाय* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *तनूजा अग्रवाल* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

प्राचीन समय में उपनिषद् ''वेदान्त'' कहलाते थे; किन्तु वे भिन्न-भिन्न समय में भिन्न भिन्न ऋषियों द्वारा प्रचार किये गये तथा बनाये गये थे। इसलिये उनकी विचार-भिन्नता को जिसका हो जाना स्वाभाविक था, जब बादरायण आचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्रों में सब उपनिषदों की विचारैकता सिद्ध कर दी, तब यह ब्रह्मसूत्र भी उपनिषदों के समान ही प्रामाणिक माना जाने लगा। इन्हीं बादरायण आचार्य द्वारा व्यास नाम से भगवत गीता में सारे उपनिषदों का सार अति निपुणता से समझाया गया है। इसलिये अन्त में उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवत गीता में ये तीनों प्रस्थानत्रयी नाम से ''वेदान्त'' के मुख्य ग्रंथ माने जाने लगे। बौद्ध धर्म के पतन के बाद प्रत्येक नवीन सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य को वेदान्त के प्रस्थानत्रयी के इन तीनो भागों पर अपने सम्प्रदाय सिद्धान्त के आधार पर भाष्य लिखकर यह सिद्ध करने की आवश्यकता हुई कि उसका सम्प्रदाय वेदान्त के अनुसार है और अन्य सम्प्रदाय इसके विरुद्ध हैं। साम्प्रदायिक दृष्टि से प्रस्थानत्रयी पर भाष्य लिखने की रीति चल पड़ने पर भिन्न-भिन्न पण्डित अपने अपने सम्प्रदायों के भाष्यों के आधार पर टीकाएँ लिखने लगे।

ब्रह्मसूत्र के भाष्यकार श्रीरामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त

शंकर से लगभग 250 वर्ष पश्चात् (जन्म विक्रम सं0 1073 तदनुसार ई0 सन 1016) श्रीरामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय चलाया। इनका ब्रह्मसूत्र पर भाष्य श्रीभाष्य कहलाता है। प्रसिद्ध है कि ब्रह्मसूत्र पर अति प्राचीन व्याख्या *वृत्ति* अथवा *कृतकोटि* नाम से बौधायन ऋषि की बनायी हुई थी किंतु वह लुप्त हो चुकी थी। उसको टंकड्रमिर्ड, गुहदेव आदि पूर्व आचार्यो ने संक्षेप किया था। उसके आधार पर श्रीरामानुजाचार्य अपने श्रीभाष्य का लिखा जाना अपने वेदार्थ संग्रह में बतलाते हैं। भगवान बौधायन की विस्तीर्ण वृतिका जो पूर्व आचार्यो ने संक्षेप किया है, उनके मत अनुसार सूत्रों का व्याख्यान किया जाता है।

* प्रवक्ता, शिक्षाशास्त्र विभाग, के. आर. गर्ल्स कॉलेज मथुरा (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

श्रीस्वामी रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त इस सम्प्रदाय का मत है कि शंकराचार्य का माया मिथ्यात्ववाद और अद्वैत सिद्धान्त दोनों झूठे हैं। चित्त अर्थात् जीव और अचित्त अर्थात् विषय शरीर, इन्द्रियाँ आदि पाँचों स्थूल भूतों से बना हुआ है भौतिक जगत् और ब्रह्म ये तीनों यद्यपि भिन्न हैं तथापि चित्त अर्थात् जीव और अचित्त अर्थात् जड़ जगत् ये दोनों एक ही ब्रह्म के शरीर हैं। अन्तर्यामी ब्राह्मण (बृह0 उप0 3/7) में कहा हैं कि यह सारा बाहरी जगत् शरीर इत्यादि और जीवात्मा ब्रह्म का शरीर है और वह इनका अन्तर्यामी आत्मा है। इसलिये चित्त अचित्त विशिष्ट ब्रह्म एक ही है। इस प्रकार से विशिष्ट रुप से ब्रह्म को अद्वैत मानने से यह सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत कहलाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार मोक्ष में जीवात्मा ब्रह्म को प्राप्त होकर ब्रह्म के सदृश हो जाता है न कि ब्रह्मरुप। पुरुषोत्तम, नारायण, वासुदेव और परमेश्वर ब्रह्म के पर्यायवाचक हैं। उपर्युक्त सारी बातों से सिद्ध होता है कि इस सम्प्रदाय में सगुण ब्रह्म अर्थात् अपर ब्रह्म शबल ब्रह्म की प्राप्ति ही अपना लक्ष्य माना है, जो योग की सम्प्रज्ञात समाधि का अन्तिम ध्येय हो सकता है।

ब्रह्मसूत्र भाष्यकार श्रीमध्वाचार्य का द्वैत सिद्धान्त

श्रीरामानुजाचार्य के 182 वर्ष पश्चात् विक्रमी सं0 1254, तदनुसार ई0 सन 1197 में श्रमदानन्द तीर्थ का जो मध्वाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हैं, जन्म हुआ। 86 वर्ष की अवस्था में विक्रमी सं0 1340, तदनुसार ई0 सन 1283 में इनका शरीर त्याग हुआ। इनका ब्रह्मसूत्र पर भाष्य *पूर्णप्रज्ञभाष्य* के नाम से प्रसिद्ध है। यह द्वैत सम्प्रदाय के प्रवर्तक हुए हैं। इनका मत है कि ब्रह्म और जीवों में कुछ अंशों में एक और कुछ अंशों में भिन्न मानना परस्पर विरुद्ध और असम्बद्ध बात है। इसलिये दोनों को भिन्न ही मानना चाहिये; क्योंकि इन दोनों में पूर्ण अथवा अपूर्ण रीति से भी एकता नहीं हो सकती। लक्ष्मी ब्रह्म की शक्ति ब्रह्म के ही अधीन रहती है; किंतु उससे भिन्न है। आर्य समाज के प्रवर्तक श्रीस्वामी दयानन्दजी महाराज का सिद्धान्त भी द्वैतवाद कहलाता है, किंतु इन दोनों में अन्तर यह है कि जहाँ श्रीमध्वाचार्यजी ने अधिकतर पुराणों का आश्रय लिया है, वहाँ स्वामी दयानन्द जी ने वेदों, उपनिषदों, वैदिक दर्शनों और प्रामाणिक स्मृतियों का उसके साथ समन्वय दिखलाया है। श्रीस्वामी दयानन्द जी का द्वैतवाद सब वैदिक दर्शनों के समन्वय के सांख्य योग का ही सर्वांश में द्वैतवाद है; किंतु उन्होंने चेतन तत्व का शुद्ध स्वरुप अर्थात् परब्रह्म को न दिखलाकर केवल ईश्वर, जीव और प्रकृति का ही वर्णन किया है; जो इस सृष्टि की सारी बाहरी रचना में पाये जा रहे हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार पुनरावर्तनीयरुप अपर ब्रह्म की प्राप्ति ही मुक्ति की सीमा हो सकती है, जो योग की सम्प्रज्ञात समाधि का अन्तिम ध्येय हो सकता है। किंतु स्वामीजी का योग साधन पर पूरा जोर देने और उसको ही परमात्मा की प्राप्ति का साधन बतलाने तथा पातंञ्जलयोग को योग को मुख्य प्रामाणिक ग्रन्थ मानने से योग की अन्तिम सीमा असम्प्रज्ञात समाधि और उसका अन्तिम ध्येय शुद्ध परमात्मस्वरुप में अवस्थितिरुप कैवल्य भी आ जाता है। स्वामी दयानन्द जी ने ईश्वर, जीव, और प्रकृति इन तीनों का जो विशेष रूप से जो वर्णन किया है। इससे सामान्यतया इनका सिद्धान्त त्रैतवाद समझा जाता है। किंतु चेतन तत्व का समष्टि ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध से ईश्वरनाम है और व्यष्टि पिण्डों के सम्बन्ध से जीव। ये दोनों चेतन तत्व के शबल अर्थात् मिश्रित रूप हैं। इसलिये स्वामी दयानन्द जी का सिद्धान्त द्वैतवाद ही है। स्वामी दयानन्दजी ने शुद्ध चेतन तत्व अर्थात् परब्रह्म का विशेष रुप से इस कारण नहीं किया कि उसका समय का जनसमूह उसके समझने में अयोग्य था और उनका मुख्य उद्देश्य समाज सुधार और धर्मरक्षा था। स्वामी दयानन्द जी के समय में हिंदू समाज और वैदिक धर्म जैसी विकट परिस्थिति में मृत्यु की ओर जा रहा था। उसका उदाहरण किसी भी पूर्वाचार्य के समय में न मिल सकेगा। स्वामी दयानन्दजी का हिंदू धर्म और समाज की निम्न प्रकार की दुर्दशा को हटाना मुख्य उद्देश्य था :

1. वैदिक धर्म का नाना प्रकार के मत मतान्तर और सम्प्रदायों में विभक्त होकर परस्पर एक दूसरे का विरोध करना।
2. एक ईश्वर उपासना के स्थान में न केवल देवी देवताओं किंतु भूत, प्रेत, पीर, पैगम्बर, कब्र, मजार आदि को सांसारिक कामनाओं के लिये पूजना।
3. मूर्ति पूजा का दुरुपयोग और मन्दिर तीर्थ आदि पवित्र स्थानों में नाना प्रकार के दुर्व्यवहार।
4. गुण, कर्म, स्वभाव को छोड़कर जन्म से जाति-पाँति की व्यवस्था मानने के कारण ऊँची कहलाने वाली जातियों की प्रमाद के कारण अवनति और नीची कहलाने वाली जातियों की उन्नति के मार्ग में रुकावट इसका परिणाम स्वरुप सारे हिंदू समाज की अधोगति।

5. स्वयं अपने गुण, कर्म और स्वभाव को ऊँचा बनाने की अपेक्षा एक दूसरे को नीचा छोटा झूठा और अपूर्ण बतलाकर अपने ऊचा, बडा, सच्चा और पूर्ण सिद्ध करने की आसुरी चेष्टा। इस प्रकार हिंदुओं में परस्पर भ्रातृभाव समानता आदर और सत्कार का अभाव।
6. ऊँचे सवर्ण कहलाने वाले संकीर्ण हृदय मनुष्यों का नीची कहलाने वाली निर्धन जातियों का न केवल धार्मिक, सामाजिक और नागरिक अधिकारों का हरण करना किंतु उनके प्रति पिषाचवत् अत्याचार करके उनको दूसरे मजहबों के जाल में फँसने के लिये मजबूर करना।
7. बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह आदि नाना प्रकार कु-रीतियाँ। स्त्रियों को शूद्रा बतलाकर उनको जन्म सिद्ध धार्मिक अधिकारों सें वंचित रखना, विधवाओं के साथ दुर्व्यवहार।
8. हिंदुओं के सामाजिक, राष्ट्रीय, नागरिक और वैयक्तिक आदि सारे अंगों में स्वार्थमय जीवन।
9. सार्वभौम वैदिक धर्म को मूर्खता और अज्ञानता से संकीर्ण करके न केवल अन्य मतावलम्बियों के लिये उसमें प्रवेश का द्वार बंद कर देना किंतु अपनी झूठी स्वार्थ सिद्धि के लिये अपने वैदिक धर्मी छोटी छोटी बातों में अपने से प्रथक करके विधर्मियों के जाल में फँसने से सहायक होना।
10. उपर्युक्त सारे दोषों से अनुचित लाभ उठाकर विदेशी मजहबों का न केवल विद्याहीन छोटी जाति वाले गाँव, पहाड़ों और जंगलों में रहने वाले अनपढ़ हिंदुओं को किंतु नीलकण्ठ जैसे बड़े बड़े अँग्रेजी पढ़े हुऐ विद्वानों को पौराणिक कथाओं में अयुक्ति और दोष दिखलाकर अपने मजहब के जाल में फँसाना।
11. राष्ट्र का परतन्त्र होना विदेशी राज के कारण देश भक्ति प्राचीन सभ्यता और धर्म भाषा के प्रति प्रेम का अभाव, दासता के विचार, विदेशी भाषा, संस्कृति और सभ्यता की ओर प्रवृति इत्यादि-इत्यादि।

ब्रह्मसूत्र के भाष्यकार श्रीवल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत सिद्धान्त

श्रीवल्लभाचार्य का जन्म विक्रमी संवत् 1536 तदनुसार 1479 ई0 सन में हुआ। इनका ब्रह्मसूत्र पर भाष्य *अणुभाष्य* कहलाता है। उनका मत निर्विशेष अद्वैत और द्वैत तीनों सिद्धान्तों से भिन्न है। यह शंकराचार्य के समान इस बात को नहीं मानते कि जीव और ब्रह्म एक हैं और न मायात्मक जगत को मिथ्या मानते हैं। बल्कि माया को ईश्वर की इच्छा से विभक्त हुई एक शक्ति बतलाते हैं। माया अधीन जीव को बिना ईश्वर की कृपा के मोक्ष ज्ञान नहीं हो सकता, इसलिये मोक्ष का मुख्य साधन ईश्वर भक्ति है। मायारहित शुद्ध जीव और परब्रह्म (शुद्ध ब्रह्म) एक वस्तु ही हैं दो नहीं हैं। इसलिये इसको शुद्ध अद्वैत सम्प्रदाय कहते हैं। इस अंश में यह सिद्धान्त सांख्ययोग के सदृश है; किंतु पौराणिक रंग में इसकी दार्शनिकता छिप गयी है।

ब्रह्मसूत्र के भाष्यकार श्रीनिम्बार्काचार्य का द्वैत अद्वैत सिद्धान्त

श्रीनिम्बार्काचार्य लगभग विक्रम सं0 1219 तदनुसार 1162 ई0 सन में हुए हैं। इन्होंने *वेदान्त पारिजात* नाम से ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखा है। जीव जगत् और ईश्वर के सम्बन्ध में इनका मत है कि यद्यपि ये तीनों परस्पर भिन्न हैं तथापि जीव और जगत् का व्यवहार तथा अस्तित्व ईश्वर की इच्छा पर अवलम्बित है, स्वतन्त्र नहीं है और ईश्वर में ही जीव और जगत् के सूक्ष्म तत्व रहते हैं। विशिष्ट अद्वैत से अलग करने के लिये इसका नाम द्वैत अद्वैत सम्प्रदाय रख गया है।

उपर्युक्त सम्प्रदाय शंकर के मायावाद को स्वीकृत न करके ही उत्पन्न हुए हैं और ज्ञान की अपेक्षा भक्ति प्रदान हैं। वैष्णव सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखते हैं। इसलिये जहाँ स्वामी शंकराचार्य का भाष्य उपनिषदों पर निर्भर है, वहाँ इन सम्प्रदायों के भाष्य में पुराणों और विशेष कर विष्णुपुराण को अधिक उद्धृत किया गया है।

प्रायः ये सब सम्प्रदाय चार प्रकार की मुक्ति मानते हैं- *1. सालोक्य मुक्ति;* विष्णु अर्थात् ईश्वर के लोक में निवास करना। *2. सामीप्य मुक्ति;* ईश्वर के लोक में ईश्वर के समीप रहना। *3. सारुप्य मुक्ति;* विष्णु अर्थात् ईश्वर के समान रुपवाला बन जाना। *4. सायुज्य मुक्ति;* विष्णु के लोक में विष्णु के समान विभूति को प्राप्त होना।

ये मुक्ति की अवस्थाएँ एक प्रकार से द्यौ लोक अर्थात् सूक्ष्य जगत के स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम के अन्तर्गत हो सकती हैं।

ब्रह्मसूत्र पर विज्ञानभिक्षु का भाष्य नये ढंग का विज्ञानामृत नाम से है; जिसमें श्रुति, स्मृति और दर्शनों की एक तात्पर्य में संगति दिखलायी गयी है, किंतु वह किसी भी साम्प्रदायिक रुप में नहीं है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

पातंञ्जल योग प्रदीप; गीता प्रेस गोरखपुर, 47
सांख्य दर्शन एवं योग दर्शन; वेदमाता गायत्री ट्रस्ट, वेद विभाग हरिद्वार, 2000
योगांक; गीता प्रेस गोरखपुर, दसवॉ संस्करण
योगवाशिष्ठ; गीता प्रेस गोरखपुर, 578

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,105-108
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 27 अक्टूबर 2015

परिवर्तित पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य में आर्थिक विकास

डॉ. राजेश निगम*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *परिवर्तित पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य में आर्थिक विकास* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *राजेश निगम* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

पर्यावरण और अर्थव्यवस्था के अन्तर्सम्बन्धों को सुव्यवस्थित रूप से क्रियान्वयन करने के लिए अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण कार्यों का संश्लेषण करना अत्यधिक महत्वपूर्ण। मुख्य रूप से ध्यान दिया जाये तो अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण दो कार्य है- वस्तुओं का उत्पादन और उनका उपभोग। इसी प्रकार पर्यावरण के भी दो महत्वपूर्ण कार्य होते हैं। सबसे पहले पर्यावरण संसाधनों की आपूर्ति करता है जिसमें ऊर्जा संसाधन एवं भौतिक (सामग्री) संसाधन दोनों सम्मिलित होते हैं। इन संसाधनों की अर्थव्यवस्था विभिन्न प्रक्रियाओं के माध्यम से उपयोग में लाकर उत्पादन में परिवर्तित करती है। इस प्रक्रिया के बाद जिन वस्तुओं का निर्माण किया जाता है उनकी बाजार के माध्यम से उपभोक्ताओं तक उपभोग करने हेतु उपलब्ध कराया जाता है। इस प्रक्रिया के उपरान्त उपभोक्ता द्वारा उत्पादित वस्तुओं का उपभोग करने के बाद अनुपयोगी पदार्थों को वातावरण में फेंक देता है। इन पदार्थों की जीव वैज्ञानिक नियम के रसायनिक नियम से अवशोषित करने का प्रयास किया जाना चाहिए, ऐसा न होने से पर्यावरण बुरी तरह प्रभावित होता है।

मनुष्य प्राकृतिक पर्यावरण में उत्पादन कारक (Producers) उपभोक्ता कारक (Consumers) और विघटित कारक (Decomposer) के रूप में कार्य करता है। ये तीनों ही पारिस्थितिकी विकास के मूल आधार हैं, क्योंकि पर्यावरण ही उत्पादक भोजन देने वाला तथा इनको विभिन्न जीवाणुओं द्वारा संश्लेषित करने वाला होता है। इसलिए इस व्यवस्था में जब तक घटक (Factors) अपनी-अपनी जगह नियमों का उल्लंघन किये बगैर कार्य करते रहें तो यह पारिस्थितिकी व्यवस्था बनी रहती है तथा इसमें कोई व्यवधान (Obstruction) नहीं आता है।

आधुनिक विज्ञान के विकास के साथ-साथ विश्व में जनसंख्या वृद्धि भी तीव्र गति से हुई है। वर्तमान में भारत की जनसंख्या एक अरब से अधिक तथा विश्व जनसंख्या 6.3 अरब से अधिक पहुँच गयी है, जिससे पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है।

* अर्थशास्त्र विभाग, डी. बी. एस. कॉलेज, कानपुर (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

मानव एवं अन्य प्राणी दोनों ही पर्यावरण को प्रदूषित करने में पूर्णरूपेण सहायक हैं। जंगलों में जानवरों द्वारा अत्यधिक चराई की जाती है, इससे जंगलों में घास व हरियाली की भारी कमी हो जाती है, जिससे वातावरण में गर्मी आ जाती है जो उस क्षेत्र को रेगिस्तान बनाने में सहायक होती है।

आर्थिक विकास के लिए मानव को विस्तृत भूमि की आवश्यकता होती है। भूमि प्राप्त करने के लिए वनों का काटना आवश्यक हो जाता है। वन विनाश का सबसे अधिक दुष्परिणाम पर्यावरणीय व पारिस्थितिकी असंतुलन है। वनों के नष्ट होने से उनमें स्थित प्राणियों के निवास स्थल भी नष्ट हो गये, वनों की कमी से वायुमण्डल में ग्रीन हाउस प्रभाव उत्पन्न करने वाली गैसों की मात्रा में निरन्तर वृद्धि, भू-क्षरण, अनावृष्टि बाढ़, वन्य प्राणियों का ह्रास व मरूस्थलीकरण आदि समस्याओं में वृद्धि होगी। जनसंख्या वृद्धि के तीव्र दबाव के कारण ऊर्जा की बढ़ती आवश्यकता की पूर्ति हेतु ऊर्जा के विभिन्न स्रोतों का विदोहन किया जा रहा है। उदाहरण के लिए कोयला, डीजल गैस व पेट्रोलियम उत्पादों का प्रयोग बहुत तीव्र गति से ऊर्जा की पूर्ति के लिए किया जा रहा है, जिसके कारण वायु प्रदूषण का खतरा बढ़ता जा रहा है।

यह चिन्ता का विषय है कि वर्तमान परिस्थिति में मानव ने प्राकृतिक वनस्पतियों के पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकी महत्व को भुला दिया है और उनका तेजी से सफाया किया है। स्थानीय, प्रादेशिक एवं विश्व स्तरों पर अनेक पर्यावरणीय एवं पारि-स्थितिकी समस्यायें उत्पन्न हो गयी हैं जैसे- मृदा अपरदन में वृद्धि, बाढ़ों की आवृत्ति तथा विस्तार में वृद्धि, वर्षा में कमी के कारण सूखे की घटनाओं में वृद्धि, जन्तुओं की कई जातियों का विलोपन आदि से पर्यावरण पर प्रभाव पड़ रहा है।

भूमि, जल, वायु, ध्वनि एवं वन ये सभी अर्थव्यवस्था एवं पर्यावरण को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार जिस कारक से पर्यावरण प्रभावित होता है, उसी से अर्थव्यवस्था भी कह सकते हैं कि अर्थव्यवस्था के प्रभावित होने पर पर्यावरण पर उसका प्रभाव वैसे ही देखा जायेगा जैसा कि पर्यावरण के प्रभावित होने पर अर्थव्यवस्था प्रभावित होती है।

पर्यावरण शब्द से आशय उन समस्त भौतिक पर्यावरण एवं जैविक पर्यावरण से है जिसमें जीवधारी निवास करते हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार प्रकृति और मानव जाति जीवन का आधार प्रणाली का अभिन्न अंग है। पाँच तत्व (वायु, जल, भूमि, वनस्पति और जीव-जन्तु) परस्पर सम्बद्ध और परस्पर आश्रित हैं। इन पाँच तत्वों में से एक भी गड़बड़ होने पर दूसरों में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है। अतः इनके बीच सन्तुलन आवश्यक है।

1985 में वन्य जीवन और जंगलात के विषय में एक नई मिनिस्ट्री कायम की गयी जो प्रधानमंत्री की देखरेख में था। विश्व की आर्थिक स्थिति पर्यावरण में व्याप्त प्राकृतिक संसाधनों द्वारा ही सुदृढ़ बनती है। तमाम प्रकार के उद्योगों हेतु कच्चा माल इसी पर्यावरण में पाये जाने वाले प्राकृतिक संसाधन द्वारा ही प्रयुक्त होता है। वर्तमान युग के विकास की इसी अंधी दौड़ में मानव अपने उपभोग की आवश्यकताओं की पूर्ति उद्योगों के ही माध्यम से कर रहा है। इन उद्योगों को जब प्राकृतिक सम्पदायें प्रचुर मात्रा में प्राप्त नहीं हो पाती हैं तो हमारी अर्थव्यवस्था का विकास प्रभावित होने लगता है। आर्थिक स्थिति सुदृढ़ बनाने हेतु हम जैसे-जैसे प्राकृतिक प्रदत्त वस्तुओं का दोहन करते हैं, वैसे-वैसे हमारा पर्यावरण प्रदूषित होता जा रहा है। हम देखते हैं कि अर्थशास्त्र भी अन्य विषयों की भाँति पर्यावरणीय अध्ययन से सम्बन्ध रखता है।

औद्योगीकरण में तीव्र वृद्धि से वायु प्रदूषण निरन्तर बढ़ता जा रहा है। विभिन्न औद्योगिक प्रक्रियाओं से वायु में कई प्रकार के प्रदूषक तत्व उत्सर्जित किये जाते हैं। कुछ प्रमुख उद्योगों जैसे- सीमेन्ट, लोहा व इस्पात पेट्रोकेमिकल इत्यादि विशेष चिन्ता के केन्द्र बन रहे हैं, क्योंकि इनके द्वारा होने वाले प्रदूषक तत्वों के उत्सर्जन पर नियंत्रण काफी कठिन होता है। अम्लीय वर्षा पर्यावरण के लिए एक गंभीर खतरा बन गयी है। पेन्ट, स्प्रे, पालिश इत्यादि के माध्यम से विलायकों का उपयोग निरन्तर बढ़ रहा है। इन विलायकों में हाइड्रोकार्बनों की उपस्थिति के कारण वायु प्रदूषण होता है, जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारण होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि में कीटनाशकों के छिड़काव से वायु प्रदूषण होता है।

निम्न स्तर के कोयले पर भारत की औद्योगिक निर्भरता से बड़े पैमाने पर कार्बन का उत्सर्जन होता है। इस प्रकार के कोयले में कार्बन की उच्च मात्रा होती है। वर्तमान में प्लेटिनियम उत्प्रेरक प्रदूषण के नये स्रोत वर्तमान में स्व-चालित वाहन उद्योगों में भी उत्प्रेरक के रूप में पेलेडियम एवं रोहडियम का उपयोग किया जा रहा है। यूरोप में 1993 से एवं भारत में 1996 से वाहनों में उत्प्रेरक परिवर्तन का उपयोग अनिवार्य कर दिया गया। आक्सीकरण उत्प्रेरक प्रथम वाहन उत्प्रेरक था जो हानिकारक कार्बनमोनोऑक्साइड (CO) एवं हाइड्रोकार्बन (HC) को हानिरहित कार्बन डाईऑक्साइड (CO_2) जल (H_2O) में परिवर्तित

करना था। इस प्रकार की रासायनिक अभिक्रिया में प्लेटिनम एवं पेलेडिया का मिश्रण उत्प्रेरक के रूप में किया जाता था। इसके बाद नाइट्रोजन ऑक्साइड (NOx) का प्रयोग उत्प्रेरक के रूप में किया जायेगा। आक्सी उत्प्रेरक का (NOx) का कम प्रभाव पड़ता है, क्योंकि यह त्रिस्तरीय उत्प्रेरक है जो (NOx) की नाइट्रोजन के रूप में परिवर्तित करते समय कार्बनमोनोऑक्साइड (CO) नाइट्रोजन (NC) कार्बाइड का ऑक्सीकरण करता है।

बड़े पैमाने पर उपयोग किये जाने वाले तीन स्तरीय उत्प्रेरक हैं। प्लेटिनम पेटोडियम एवं रोहडियम जो हानिप्रद NOx को हानिरहित नाइट्रोजन में परिवर्तित करता है।

अतः कहा जा सकता है कि प्राकृतिक संसाधनों के साथ ही साथ मानव प्रदत्त वस्तुएँ वातावरण को अत्यधिक प्रभावित करती है। अतएव मानव ही अपने वातावरण में परिवर्तन कर उसमें पाये जाने वाले पदार्थों को अपनी आवश्यकता के लिए उपयोग में लाता है। उसी के परिश्रम के फलस्वरूप आज विश्व में कही पर कृषि वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है और कहीं निर्माण उद्योग विकास सम्भव हो पाया है। पृथ्वी पर प्राप्त होने वाले प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करने के लिए मानव के विचार उसके संगठन और श्रम सभी की आवश्यकता होती है।

विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक एवं मानवीय नाशवान वस्तुएँ जैसे- लकड़ी, कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस, अल्कोहल एवं खनिज पदार्थ हैं, जो कि वातावरण को नुकसान पहुँचाने में सहायक है। इसी को चित्र के माध्यम से निम्नवत् दर्शाया गया है-

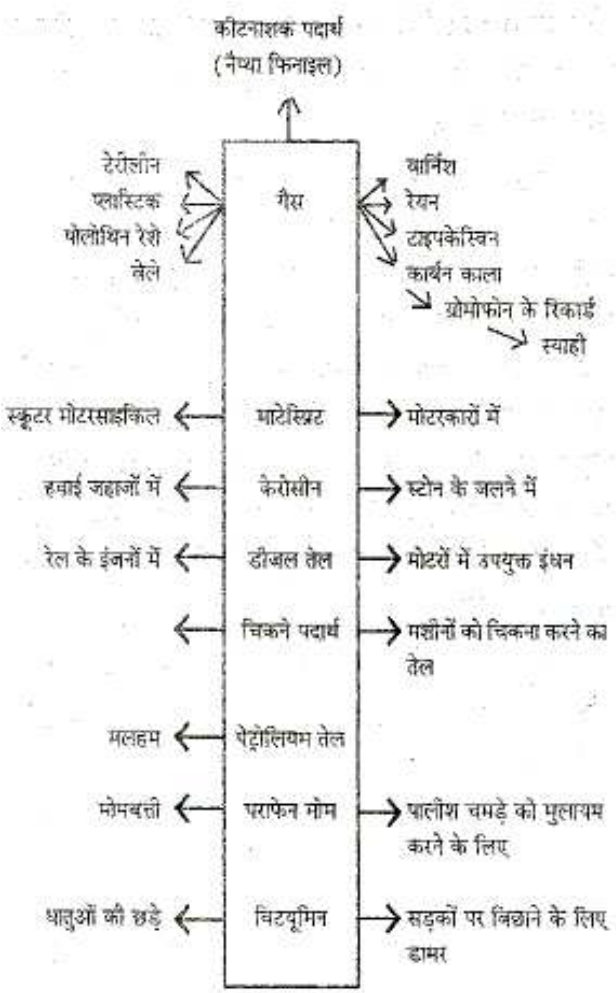

उपर्युक्त डाइग्राम के माध्यम से स्पष्ट होता है कि पर्यावरण को प्रभावित करने में विभिन्न रासायनिक पदार्थों का सामयिक योगदान है, जो भविष्य में मानवीय सभ्यता और आर्थिक विकास दोनों को ही प्रभावित करेंगे।

भविष्य में पृथ्वी पर आज की तुलना में धूल की मात्रा काफी कम होगी। इससे जहाँ एक ओर कुछ लोगों के स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा, वहीं पृथ्वी के वायुमण्डल का तापमान बढ़ेगा। यह भविष्यवाणी एक मॉडल में की गयी है जो इन तथ्यों पर आधारित है कि पृथ्वी का कितना समुद्र से आच्छाति है। उसके चारों ओर धूल उड़ाने वाली हवा कितनी है और वर्षा कितनी होती है। इस मॉडल को विकसित करने वाले बोल्डर कोल डो के राष्ट्रीय पर्यावरण अनुसंधान केन्द्र के मताली महोवाल्ड और चाओ लुओ ने भविष्य के वातावरण वनस्पति और भूमि के सम्बन्ध में भविष्यवाणी करने के लिए छः पृथक-पृथक परिदृश्यों की परिकल्पना की है।

अनुमान के अनुसार 2090 तक 60 प्रतिशत कम धूल उड़कर वायुमण्डल में पहुँचेगी। धूल में विद्यमान स्रोतों में 20 प्रतिशत की गिरावट आयेगी। न्यूयार्क में नासा गोडाड्र अन्तरिक्ष अध्ययन संस्थान के वातावरण वैज्ञानिक रॉन मिलर के अनुसार, जिस किसी भी चीज से वातावरण में धूल की मात्रा घटेगी, उससे पृथ्वी की गर्मी बढ़ने की भी पूरी सम्भावना है क्योंकि वातावरण के सबसे ऊपरी भाग में धूल कुछ ऊर्जा को जहाँ प्रत्यावर्तित कर अंतरिक्ष में वापस भेज देता है, वहीं कुछ ऊर्जा सोख लेती है, जिसके कारण पृथ्वी की सतह ठण्डी हो जाती है। धूल की मात्रा में कमी आने का प्रभाव समुद्र पर भी पड़ेगा। धूल अपने साथ आयरन में कमी आने से कटान की मात्रा में भी कमी आयेगी जिससे कार्बनडाईऑक्साइड की फोटोसिन्थेसस घटेगी। इससे यह भी संभव है कि समुद्र अपने भीतर

कार्बनडाइऑक्साइड की उतरती मात्रा को सोख न सके। ऐसी स्थिति में पर्यावरण और अर्थव्यवस्था बुरी तरह प्रभावित होगी और मानव जीवन ही खतरे में पड़ जायेगा।

सन्दर्भ

डॉ. वी0सी0 सिन्हा एवं डॉ0 पुष्पा सिंह -विकास एवं पर्यावरणीय अध्ययन (पृष्ठ संख्या 365-391), एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन, आगरा

ANIL KUMAR RE, AMAL KUMAR RE, *Environment and Ecology,* pp. 118-19] (As per the new syllabus B. Tech. Ist Year of U.P. Technical University), New Age International (P) Limited Publishers, New Delhi, Mumbai, Chennai, Lucknow.

डा0 दशरथ सिंह एवं डॉ0 एम0सी0 पाल -पर्यावरणीय अध्ययन (पृष्ठ संख्या 24), 2007, विजय प्रकाशन मन्दिर, वाराणसी-02

डॉ0 चतुर्भुज मामोरिया एवं डॉ0 एस0एस0 सिसौटिया -संसाधन एवं पर्यावरण, 2007 (पृष्ठ संख्या 6), साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा0 लि0

दीनानाथ शुक्ल, पी0 कुमार एवं वन्दना श्रीवास्तव -पर्यावरण अध्ययन समस्यायें एवं निदान, 2007 (पृष्ठ संख्या 36-38), क्षितिज प्रकाशन, नरायनपुर, शिवपुर, वाराणसी

यूथ कॉम्पिटिशन टाइम्स, 2003 (पृष्ठ संख्या 26-27), यूथ कम्पटीशन टाइम्स 12, चर्च लेन, इलाहाबाद-02

लेखकों के लिए निर्देश

शोधपत्र का अनुरोध

लेखक अपना शोधपत्र डॉ. मनीषा शुक्ला ,प्रधान सम्पादिका आन्वीक्षिकी भारतीय शोध पत्रिका को ई-मेल पर प्रेषित करें। (maneeshashukla76@rediffmail.com)

प्राप्त शोधपत्र पत्रिका में प्रकाशन के पूर्व पुनर्निरीक्षित किये जायेंगे। स्वीकृत शोधपत्र कहीं और प्रकाशित नहीं होना चाहिए और न ही उस शोधपत्र का कोई भी भाग प्रधान सम्पादिका के अनुमति के बिना कहीं और प्रकाशित किया जा सकता है। कृपया अपने शोधपत्र की पाण्डुलिपि निम्न भागों में तैयार करें,शीर्षक ;सारांश ;पाण्डुलिपि ;पुस्तक संदर्भ सूची। कृपया पुनर्निरीक्षण की गुणवत्ता में सहायता करने हेतु अपना नाम पता पाण्डुलिपि पर न दें।

शीर्षक :शीर्षक पाण्डुलिपि पर अवश्य दें,किन्तु अपना पूरा नाम,पता,संस्था जहाँ पर अध्ययन अथवा अध्यापन कार्य सम्पादित किया गया हो, आपका विषय,दूरभाष अथवा मोबाइल,फैक्स,ई-मेल पत्राचार हेतु अलग पृष्ठ पर अवश्य दें। उपर्युक्त तथ्य आपके शोधपत्र के शब्द सीमा के अन्तर्गत ही माना जायेगा।

सारांश :कृपया शोधपत्र का सारांश 120 शब्दों में दें।

पाण्डुलिपि :इसके अन्तर्गत मुख्य पाठ्य सामग्री होगी ; जो 5 से 10 पृष्ठ तक होनी चाहिये। शोधपत्र 10 पृष्ठ से (सारांश,शब्द संक्षेप,संदर्भ सूची समेत)अधिक प्रकाशन हेतु स्वीकार नहीं किया जायेगा। अन्यथा वृहद् शोधपत्र(10 पृष्ठ से अधिक) प्रकाशन में देर भी हो सकती है। लेखक को यह बात स्वीकार होनी चाहिए कि शोधपत्र पुनर्निरीक्षण के दौरान किये गये संशोधन उन्हें मान्य होंगे। शोधपत्र प्रकाशन के दौरान त्रुटि की सम्भावना न बने इसका पूरा ध्यान रखा जाता है फिर भी कोई त्रुटि पाये जाने पर लेखक संशोधित रीप्रिंट प्राप्त कर सकता है ; पत्रिका में संशोधन की व्यवस्था नहीं है।

सन्दर्भ वर्णमालाक्रामानुसार :शोधपत्र के समापन पर कृपया संदर्भ वर्णमाला क्रमानुसार दें। पत्रिका का वर्ष,लेखक, पृष्ठ संख्या,भाग इत्यादि विस्तार से दें। पुस्तक शीर्षक या पत्रिका शीर्षक इटालिक दें।

पुस्तक :प्रकाशक का नाम,संस्करण संख्या,प्रकाशन वर्ष,लेखक का नाम,पुस्तक का नाम,पृष्ठ संख्या

पत्रिका :पत्रिका का नाम,लेख का शीर्षक,लेखक का नाम,प्रकाशक का नाम,अंक संख्या/माह,वार्षिक अथवा अर्द्धवार्षिक अथवा मासिक जो भी हो स्पष्ट करें।

समाचार पत्र :प्रकाशक,तिथि,सन् ,पृष्ठ संख्या,

इण्टरनेट :वेबसाइड,पृष्ठ संख्या,मुख्य शीर्षक,अन्त: शीर्षक।

मानचित्र एवं सारणी :मानचित्र एवं सारणी अथवा चित्र शोधपत्र की समाप्ति के अन्त में दें। यह ब्लैक एण्ड व्हाइट ही होना चाहिए। इसका स्पष्ट संकेत पाण्डुलिपि में दें(उदाहरण सारणी संख्या 1)

विशेष :कृपया अपना शोधपत्र ई-मेल करने के बाद डॉक से अवश्य भेजें। अपने शोधपत्र के साथ-साथ अपना वायोडाटा, फोटो,स्वपता लिखा लिफाफा(25 रू के टिकट सहित)भेजें। शोधपत्र यदि हिन्दी भाषा में है तो ए.पी.एस प्रियंका रोमन(ए.पी.एस. कार्पोरेट 2000++)में तैयार सी.डी के साथ दें। शोधपत्र प्राप्त होने के एक सप्ताह के अन्दर लेखक को स्वीकृति पत्र प्रेषित कर दिया जायेगा। ई-मेल से प्राप्त शोधपत्र हेतु ई-मेल से स्वीकृति भेजी जायेगी। शोधपत्र प्रेषित करने के पूर्व प्रधान सम्पादिका से दूरभाष पर अवश्य सम्पर्क करें। सम्पादक मण्डल अथवा सलाहकार समिति में सम्मिलित करने का अंतिम निर्णय संस्था का होगा।

सदस्यों से निवेदन है कि वर्ष में 20 सदस्य पत्रिका से जोड़कर संस्था का सहयोग करें।

Other MPASVO Journals

Saarc : International Journal of Research
(Six Monthly Journal)
www.anvikshikijournal.com

Asian Journal of Modern & Ayurvedic Medical Science
(Six Monthly Journal)
www.ajmams.com

IJRA
www.anvikshikijournal.com

ISSN 0973-9777
09739777
₹ 1200/-